जन स्वास्थ्य धारणा

अंक: 34 I सितम्बर, 2026

हिंदी
भाषा एवं साहित्य
— विशेषांक —



इस अंक के आकर्षण.....

- राजभाषा का महत्व और उसका प्रसार
- एकात्म आरोग्य: स्वास्थ्य संचार की भारतीय दृष्टि
- वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी की दशा और दिशा
- डिजिटल युग में हिंदी भाषा का बदलता स्वरूप
- कर्नाटक में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का विकास
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की भूमिकारू एक विश्लेषण
- भारत में टीकाकरण संबंधित संदेह दूर करने के लिए स्वास्थ्य संचार
- शासकीय कार्यों में राजभाषा हिंदी का महत्व एवं कार्यालयीन प्रयोग
- कविताएं/गीत/दोहे



राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान
मुनिरका, नई दिल्ली– 110067

जन स्वास्थ्य धारणा

अंक: 34 I सितम्बर, 2026

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान
मुनिरका, नई दिल्ली– 110067

जन स्वास्थ्य धारणा

अंक: 34 I सितम्बर, 2026

प्रधान संपादक
डॉ. बिनोद कुमार पात्रो

प्रबंध संपादक
प्रो. अंकुर यादव

सह संपादक
डॉ. गणेश शंकर श्रीवास्तव

परामर्श मंडल
श्री संजय कुमार
डॉ. अतुल कोठारी
प्रो. कुमुद शर्मा
प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव
प्रो. अवनिजेश अवस्थी
प्रो. वंदना झा
डॉ. मलखान सिंह
डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'
डॉ. संदीप कुमार श्रीवास्तव

परिकल्पना एवं डिजाइन
डॉ. गणेश शंकर श्रीवास्तव
सुश्री संध्या

लेख भेजने हेतु पताः
प्रमुख संपादक जन स्वास्थ्य धारणा राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, मुनीरका, नई दिल्ली-110067 (पत्रिका में विषय-विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित लेख प्रकाशित किए जाते हैं)

जन स्वास्थ्य धारणा में व्यक्त विचार लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं तथा यह आवश्यक नहीं है कि ये विचार संस्थान की नीतियों के द्योतक हों।

निदेशक की कलम से : डॉ. बिनोद कुमार पात्रो
संपादकीय : प्रो. अंकुर यादव/ डॉ. गणेश शंकर श्रीवास्तव

आलेख

- राजभाषा का महत्व और उसका प्रसार/ राजेन्द्र वर्मा 1-4
- एकात्म आरोग्य: स्वास्थ्य संचार की भारतीय दृष्टि/ सचित्र मिश्र 5-8
- लोक भाषा, राष्ट्रभाषा से राजभाषा तक/ डॉ. विनोद बब्बर 9-11
- भारत में टीकाकरण संबंधित संदेह दूर करने के लिए स्वास्थ्य संचार: हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं की भूमिका/ डॉ. अदिति जोशी 12-13
- शासकीय कार्यों में राजभाषा हिंदी का महत्व एवं कार्यालयीन प्रयोग/ निशा 14-16
- वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी की दशा और दिशा/ डॉ. राकेश शुक्ल 17-19
- हिंदी भाषा की बोलियों में श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्द : एक भाषावैज्ञानिक अध्ययन / डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह 20-26
- डिजिटल युग में हिंदी भाषा का बदलता स्वरूप/ भावना कथूरिया एवं ज्योति भारद्वाज 27-28
- कर्नाटक में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का विकास/ ज्ञानचंद मर्मज्ञ 29-30
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की भूमिका: एक विश्लेषण/ डॉ. शिव प्रकाश कटियार 31-32

लघु कथाएँ
डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर' 33

कविताएं : धरोहर 34-35
कबीरदास के दोहे, तुलसीदास के दोहे, भारति जय विजयकरे/ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', मेरी भी आभा है इसमें/ नागार्जुन

कविताएं : समकालीन हस्ताक्षर 36-40
जब हम बड़े हुए/ श्री संजय कुमार, विश्वास/ डॉ. रेखा मीणा, यादें/ निशा, हिन्दी का यश / डॉ. विनम्र सेन सिंह, बहुत दिनों से / डॉ. गणेश श्रीवास्तव 'ऋषि', दोहे/ डॉ. मृदुल शर्मा, ग़ज़ल/ के० पी० अनमोल

भारत के प्रमुख स्वास्थ्य सूचकांक 41-42

अनुरोध 43





निदेशक की कलम से



भाषा किसी भी समाज की पहचान होती है। इसके माध्यम से हम अपने विचार एक-दूसरे तक पहुँचाते हैं। भाषा के साथ हमारे अनुभव, ज्ञान, संस्कृति, परंपराएँ और भावनाएँ भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती हैं। इस दृष्टि से हिन्दी भारतीय जनजीवन से गहराई से जुड़ी एक सरल, सहज और जीवंत भाषा है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान के लिए जन स्वास्थ्य का अर्थ केवल स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराना ही नहीं है। लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करना, सही जानकारी देना, अच्छे स्वास्थ्य व्यवहार के लिए प्रेरित करना और समाज की भागीदारी सुनिश्चित करना भी जन स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इन सभी कार्यों में भाषा की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्वास्थ्य संबंधी जानकारी जिस भाषा में लोग आसानी से समझ सकें, उसका प्रभाव भी उतना ही अधिक होता है।

हिन्दी का प्रयोग आज प्रशासन, शिक्षा, साहित्य, संचार और सामाजिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में हो रहा है। राजभाषा के रूप में हिन्दी को संविधान में स्थान प्राप्त है। सरकारी कार्यों में हिन्दी के प्रयोग और शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी के विस्तार से इसका महत्त्व और बढ़ा है। हिन्दी की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि यह बड़ी संख्या में लोगों तक सरलता से पहुँचती है और उनके साथ सीधे संवाद स्थापित करती है।
इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए "जन स्वास्थ्य धारणा" का यह हिन्दी भाषा एवं साहित्य विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। यह विशेषांक हमारे लिए विशेष महत्त्व रखता है। इसमें हिन्दी भाषा और राजभाषा से जुड़े आलेखों के साथ साहित्यिक रचनाओं और कविताओं को भी स्थान दिया गया है। इस प्रकार यह अंक हिन्दी की भाषा और साहित्य—दोनों पक्षों को सामने लाता है।

मुझे विश्वास है कि इस विशेषांक में प्रकाशित सामग्री पाठकों के ज्ञान और संवेदना को समृद्ध करेगी तथा हिन्दी के प्रति उनकी रुचि को बढ़ाएगी। साथ ही, यह विशेषांक जन स्वास्थ्य के क्षेत्र में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से प्रभावी संचार के महत्त्व को भी रेखांकित करेगा।

मुझे प्रसन्नता है कि जन स्वास्थ्य धारणा का इस हिंदी भाषा एवं साहित्य विशेषांक को प्रधान संपादक के रूप में मैं आप सब सुधी पाठकों को सौंप रहा हूँ। आपकी प्रतिक्रियाएँ ही हमें बताएंगी कि हमारा यह प्रयास कितना सफल और सार्थक सिद्ध हुआ। अंत में, पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग देने वाले डॉ. अंकुर यादव, डॉ. गणेश शंकर श्रीवास्तव तथा उनकी पूरी टीम को मैं हृदय से साधुवाद प्रेषित करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित,
डॉ. बिनोद कुमार पात्रो
प्रधान संपादक





संपादकीय



डॉ. गणेश शंकर श्रीवास्तव
सह संपादक

प्रो. अंकुर यादव
प्रबंध संपादक

भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि समाज की संस्कृति, संवेदना, अनुभव और सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति भी है। पीढ़ियों के बीच ज्ञान, परंपरा और संस्कृति को पहुँचाने में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दी भी भारतीय समाज की इसी व्यापक सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना की प्रतिनिधि भाषा है।

हिन्दी का स्वरूप समय के साथ निरंतर विकसित हुआ है। सामाजिक संपर्क, शिक्षा, प्रशासन, व्यापार, साहित्य तथा अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के प्रभाव ने इसे समृद्ध और व्यापक बनाया है। हिन्दी की विभिन्न बोलियों के बीच भाषिक संपर्क ने भी इसकी विविधता को बढ़ाया है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा एक स्थिर नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है।

भारतीय संविधान में हिन्दी को संघ की राजभाषा का स्थान प्राप्त है। राजभाषा के रूप में हिन्दी का उद्देश्य केवल कार्यालयी कार्यों में इसका प्रयोग बढ़ाना ही नहीं, बल्कि जनसंचार को अधिक सरल और प्रभावी बनाना भी है। हिन्दी दिवस, हिन्दी पखवाड़ा, कार्यशालाएँ, प्रतियोगिताएँ, कवि सम्मेलन और साहित्यिक आयोजन हिन्दी के प्रयोग और प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने में सहायक हैं।
हिन्दी का विस्तार भारत तक सीमित नहीं है। विश्व के अनेक देशों में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है और प्रवासी भारतीय समुदायों के माध्यम से इसकी सांस्कृतिक उपस्थिति भी निरंतर बढ़ रही है। वैश्विक स्तर पर हिन्दी की भूमिका को और व्यापक बनाने की आवश्यकता है।

भाषा और साहित्य का संबंध भी बहुत गहरा है। साहित्य भाषा को विचार, संवेदना और सृजनात्मकता प्रदान करता है। कविता, कहानी, दोहे, गीत, ग़ज़ल और लघुकथा जैसी विधाएँ हिन्दी के समृद्ध और जीवंत साहित्यिक स्वरूप को सामने लाती हैं।
जन स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी भाषा का विशेष महत्त्व है। स्वास्थ्य संबंधी जानकारी और संदेश तभी अधिक प्रभावी होते हैं, जब वे आमजन को सरल और सहज भाषा में समझ में आएँ। इस दृष्टि से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ जन स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाने और प्रभावी संवाद स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

प्रिय पाठकगण, 'जन स्वास्थ्य धारणा' का चौंतीसवाँ अंक आपके हाथों में है। हमारा प्रयास रहा है कि इस विशेषांक के माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य के विविध विषयों पर प्रबुद्ध विद्वानों द्वारा लिखे गए उपयोगी और सूचनापरक आलेख आप तक पहुंचाए जाएं। साथ ही इस विशेषांक में लघुकथाएँ, दोहे, गीत ग़ज़ल एवं कविताओं का प्रकाशन भी किया जा रहा है। आपकी प्रतिक्रियाएं हमें अवगत कराएंगी कि हम इस प्रयास में कितने सफल हुए। आपसे पत्रिका के आगामी सामान्य अंक के लिए जन स्वास्थ्य के विविध विषयों पर मौलिक लेख आमंत्रित हैं। आप अपने लेख हिंदी फांट मंगल में टंकित कर ankuryadav@nihfw.org एवं ganeshsrivastava@nihfw.org पर मेल कर सकते हैं।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

राजभाषा का महत्व और उसका प्रसार

प्राचीन काल में अपने यहाँ संस्कृत, पालि, अपभ्रंश आदि भाषाओं का राजभाषा के रूप में प्रयोग होता था। बाद में हिंदी का प्रयोग भी शुरू हुआ था, लेकिन मुगलों के आने के हिंदी की जगह फ़ारसी और उर्दू ने ले ली। राजपूत और मराठा राजाओं के काल में हिंदी का प्रयोग प्रचलित रहा। इसके प्रमाण में उनके दरबारों से जारी फरमान उपलब्ध है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हिंदी राज्य की भाषा बनने हेतु पूर्णतः सक्षम रही है



राजेन्द्र वर्मा

हिंदी हमारी राजभाषा है। राजभाषा किसी राज्य या प्रशासन की भाषा कहलाती है जो सरकारी कामकाज के लिए स्वीकार की गई हो तथा शासन और जनता के बीच आपसी संपर्क के काम आती हो। संविधान के अनुच्छेद 343 में इसकी व्यवस्था की गयी है कि हिंदी देश की राजभाषा होगी और उसकी लिपि नागरी होगी।

प्राचीन काल में अपने यहाँ संस्कृत, पालि, अपभ्रंश आदि भाषाओं का राजभाषा के रूप में प्रयोग होता था। बाद में हिंदी का प्रयोग भी शुरू हुआ था, लेकिन मुगलों के आने के हिंदी की जगह फ़ारसी और उर्दू ने ले ली। राजपूत और मराठा राजाओं के काल में हिंदी का प्रयोग प्रचलित रहा। इसके प्रमाण में उनके दरबारों से जारी फरमान उपलब्ध है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हिंदी राज्य की भाषा बनने हेतु पूर्णतः सक्षम रही है।अंग्रेजों ने भी फारसी, उर्दू और अंग्रेजी को अपनी राज-काज की भाषा बनाया, पर हिंदी का अध्ययन-अध्यापन नहीं रुका। साथ-ही वह व्यापार की भी भाषा बनी रही। इतना ही नहीं आज़ादी की लड़ाई में हिंदी संपर्क भाषा के रूप में उभरी। परिणामस्वरूप हिंदी का उत्तरोत्तर प्रसार होने लगा और आज़ादी की लड़ाई के दौरान ही यह मत बनने लगा कि हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा या देश के काम-काज की भाषा बनाया जाना चाहिए।

आज़ादी के समय देश के राजकाज की भाषा प्रमुखतः अंग्रेजी थी, जो आज़ादी मिलने के बाद भी बनी रही। फिर भी सत्ता में बैठे लोगों के मन में यह बात बनी रही कि जिस प्रकार देश का राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान आदि है, उसी प्रकार उसके राजकाज की एक भाषा होनी चाहिए क्योंकि अंग्रेजी जनता और सरकार के बीच एक दीवार की भाँति थी। वास्तव में जब तक किसी देश में विदेशी भाषा में शासन होता रहेगा, वह देश सही अर्थों में स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। जनता अपने विचारों की अभिव्यक्ति मातृभाषा में अच्छे ढंग से कर सकती है। साथ-ही एक ऐसी भाषा जो सर्वमान्य हो, देश के तमाम भागों को एक सूत्र में बाँध सकती है। इसके अलावा इस तथ्य से भी नहीं इनकार किया जा सकता था कि देश का सर्वांगीण उत्थान उसकी अपनी भाषा के माध्यम से ही हो सकता है। रूस, जापान, जर्मनी आदि इसके प्रमाण हैं। भारत चूँकि बहु भाषा-भाषी देश है; उसमें कोई एक ही भाषा नहीं बोली जाती है, अतः यह प्रश्न उठा कि देश की राष्ट्रभाषा अथवा, राजकाज की भाषा क्या हो?

इस प्रसंग में, हिंदी भाषा ने आज़ादी के समय अपनी शक्ति-सामर्थ्य से लोगों को परिचित करा दिया था, क्योंकि यह देश के अधिकांश भागों में बोली-समझी जाती थी और आज भी यही स्थिति है। अतः तमाम विचार-मंथन के बाद 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया गया। भारत का संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ और तब से देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी भारत की राजभाषा है। 14 सितम्बर को इसलिए 'राजभाषा दिवस' अथवा 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

इस प्रकार, हिंदी देश की राष्ट्रभाषा तो न बन सकी, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा बन गयी— "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि नागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा"। हिंदी राजभाषा बन तो गयी, पर अभी वह अंग्रेज़ी को हटाकर उसकी गद्दी पर नहीं बैठ सकती थी, क्योंकि कुछ लोगों ने हिंदी के राजभाषा बनने का विरोध भी किया। अतः संविधान लागू होने के पंद्रह वर्षों के बाद भी अंग्रेजी में काम करने की व्यवस्था कर दी गयी। उम्मीद थी कि इस अवधि के बाद हिंदी अंग्रेज़ी का स्थान लेने लायक़ हो जाएगी। लेकिन अभी तक ऐसा न हो सका।

जनतंत्र का अर्थ ही है कि जनता का शासन। फिर जनता का न्यायिक शासन किसी और की भाषा में क्यों? हालांकि ऐसा नहीं है कि हिंदी ने

अंग्रेज़ी के शब्दों को आत्मसात नहीं किया है; उसने भी सैकड़ों शब्द अंग्रेजी के लिए हैं, जैसे— साइकिल, स्कूटर, कार, ट्रक, बुलडोज़र, रेल, प्लेटफॉर्म, कोर्ट, जज, स्टेनो, सेक्रेटरी, एस.डी.ओ., डी.एम., ऑफिस, ऑफिसर, चेअर, टेबल, रैक, क्लर्क, ड्राफ्ट, लेटर, प्रेस, लीडर, फ़ास्ट-फ़ूड, हॉस्पिटल, डॉक्टर, कम्पाउण्डर, नर्स, मेडिसिन, शर्ट, पैंट, होटल, रूम, बेड, बेडकवर, गीज़र, लाइन, बिल्डिंग, बिल्डिंग-मटीरियल, टैक्स,लेकिन अभी तक उसने उनके प्रयोगों में बहुत सतर्कता बरती है।

ध्यान देने वाली बात यह है कि हम जब विषय विशेष में स्वयं को अंग्रेजी में व्यक्त करते हैं, तो हम अपनी मौलिकता का अनुवाद-भर प्रस्तुत कर रहे होते हैं। हम केवल रटी-रटाई भाषा बोल रहे होते हैं, जैसे कोई नर्सरी का बच्चा 'ट्विंकल-ट्विंकल लिटिल स्टार' पोएम सुनाये। वह न लिटिल स्टार का अर्थ समझता है और न ही ट्विंकल का। इस प्रकार, हमारी मूल अभिव्यक्ति दबी-की-दबी रह जाती है, क्योंकि हम अपनी भावनाओं को अपनी मातृभाषा के मुहावरों में नहीं प्रकट कर पाते। तथापि, जब हम अंग्रेजी में स्वयं को व्यक्त करते हैं, तो भाषिक तर्क हमें पश्चिम की और खीचता है, जबकि हमारा अनभुव पूर्व की ओर। इस प्रकार अंग्रेजी के मुकाबले अकेले हिंदी ही नहीं, वे सभी 22 अन्य भाषाएँ जो फ़िलहाल संविधान की आठवीं सूची में क़ैद है और 30-32 लाइन लगाये हुए हैं, कुछ काम की नहीं दिखतीं। ऐसे में अंग्रेजी मात्र भाषा नहीं रह जाती, वह स्वायत्तता ग्रहण कर लेती है और हमें डिक्टेट करना शुरू कर देती है और हम प्राइमरी स्कूल के बच्चों की तरह इंग्लिश मैम का सही और सुन्दर इमला लिखने में जुट जाते हैं। इस डिक्टेशन में हमें यह आज़ादी नहीं रहती कि हम किसी मुद्दे पर अपने विचारों को किस प्रकार और किस सीमा तक व्यक्त करें। दफ्तरों में नोटिंग-ड्राफ्टिंग तथा उससे जन्मे पत्र-व्यवहार और ऊंची अदालतों में दाखिल याचिकाएँ और उन पर दिये गए निर्णय इसके उदाहरण हैं। यहाँ विचार का कोई स्थान नहीं, केवल कार्यालयीन प्रक्रिया को दर्ज किया जाता है और इसमें प्रयुक्त पारिभाषक भाषा, वह चाहे हिंदी ही क्यों न हो, शुष्कता का शिकार हो जाती है।

हिंदी को हम यदि राजभाषा के रूप में ही लागू करें, तो सबसे पहले यह समझना होगा कि भाषा कोई ठहरी हुई वस्तु नहीं है— वह बहती हुई नदी का जल के समान है। उसे समझने के लिए उसके स्वरूप, लक्षण और उद्गम पर विचार करना होगा। यहाँ हिंदी के कथाकार,निर्मल वर्मा के विचार बहुत प्रासंगिक हैं। उनके अनुसार—

'जिस प्रकार मनुष्य पूर्ण नहीं, क्योंकि वह निरंतर गतिशील है और कुछ ने रचने में लगा है, उसी प्रकार भाषा भी स्वयं में कुछ-न-कुछ नया जोडती चलती है और अपने साधक की स्मृति, संस्कृति आदि को तरोताज़ा करती रहती है... भाषा के दो रूप होते हैं— एक, जो हम बोलते हैं और दूसरा, जो हमसे वह बुलवाती है। बोलने की प्रक्रिया पर यदि हम ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह भाषा ही है जो हमारे हृदय में संस्कृति और स्मृति के रूप में रहती है और हम अपने विचारों को उसी रूप में प्रकट कर पाते हैं जिसमें हमारा हृदय प्रकट करने की अनुमति देता है।इससे ही हमारी सामर्थ्य और सीमा तय होती है। हमारे विचारों की ग्राह्यता उसकी भाषा पर ही निर्भर है। भाषा के द्वारा आदमी दुनिया के सामने आता है और अपने विचारों से अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ता है। यह तभी सम्भव हो पाता है जब उसका प्रयोजन स्वभाव से मेल खाता है। स्वभाव सदैव संस्कृति से बनता है और संस्कृति का निर्माण हमारा बचपन करता है'।

भारत विविधताओं का देश है। इन विविधताओं में हिंदी, बंगला, उड़िया, मलयालम, तेलगु, तमिल आदि भाषाएँ भी सम्मिलित हैं। जब हम राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार करेंगे, तो सबसे पहले हिंदी को अंग्रेजी के मुकाबले समृद्ध करना होगा और यह तभी संभव है जब हम अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को हिंदी में सम्मिलित करें, जबकि हो इसका उल्टा रहा है। तथ्य तो यह है कि जो भाषाएँ आठवीं सूची में दर्ज हैं और जो दर्ज होने की माँग कर रही हैं, उनमें से आसान और बोलचाल के शब्दों को हिंदी में शामिल करने के बजाय उन्हें हिंदी के विरुद्ध खड़ा किया जा रहा है।

हिंदी की वक़ालत करने वाले भी हिंदी के लिए क्या कर रहे हैं, यह भी विचारणीय है। हिंदीवाले को पता ही नहीं कि बांगला, उड़िया, कन्नड़ आदि में क्या लिखा जा रहा है। हिंदी में भी जिसे देखिए, स्वयंभू साहित्यकार है। भाषा की कोई साधना नहीं; विचारों में मौलिकता नहीं; बस नक़ल पर आधारित साहित्य रचा जा रहा है। उनसे कोई पूछे कि इधर आपने हिंदी साहित्य की कौन-सी कृति पढ़ी, तो वे बगलें झाँकने लगेगें। उन्हें यह भी नहीं मालूम होगा कि आज हिंदी में कौन अच्छा लिख रहा है और कौन-सी पठनीय या संग्रहणीय पुस्तकें छपी हैं।

विश्व का तमाम साहित्य हिंदी में अनूदित होकर बाजार में आ रहा है, लेकिन हिंदी के पाठक गायब हैं। तीस करोड़ हिंदी बोलने वालों में क्या पन्द्रह करोड़ पाठक नहीं होने चाहिए?... पन्द्रह करोड़ तो छोड़िए, एक करोड़ भी नहीं हैं। हिंदी के नामी-गिरामी लेखक-कवि की पुस्तक की प्रतियां आज पाँच सौ से हजार तक ही छपती हैं। धार्मिक साहित्य, विशेषतः तुलसीदास की 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त प्रेमचन्द, रेणु जैसे लेखकों की पुस्तक भले थोड़ी-बहुत पढ़ी जाती हों, अन्यथा आज हिंदी का कोई ऐसा लेखक-कवि नहीं है कि जिसके इतने पाठक हों कि वह अपने सृजन के बल पर रोटी खा सके।

संस्कृत के दुश्मनों ने संस्कृत को गड्ढे में गिरा कर ही दम लिया। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस'इसलिए अवधी में लिखा। क्या वे उसे संस्कृत में नहीं लिख सकते थे? बल्कि प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में दो-चार श्लोक लिखकर पंडितों को दिखा भी दिया। तभी 'रामचरितमानस' आज सर्वाधिक पढ़ी जाती है। पंडितों ने उस पर भी

रोक लगा दी। उसे पूजा की वस्तु बना दी। पर यह अलग अलग सवाल है। आज के भाषाई पंडितों को लगता है कि यदि बोल-चाल की भाषा से शब्द उठा लेंगे, तो फिर उन्हें पूछेगा कौन? शब्द की उत्पत्ति के उनके लेक्चर कौन सुनेगा? लगता है, अंग्रेज़ी ने उन्हें रिश्वत खिला रखी है कि अपनी बेवकूफ़ी से हिंदी का कल्याण न होने दें! हिंदी के इन दुश्मनों को कौन सबक़ सिखाए?

अंग्रेज़ी और हिंदी शब्दकोशों की स्थिति पर भी एक नज़र डाल लीजिए। पहली बार जब इन भाषाओं के शब्दकोशों को बनाया गया तो अंग्रेजी में शुरू में कोई दस हज़ार शब्द थे, जबकि हिंदी में बीस हज़ार। आज क्या स्थिति है? आपको यह जानकर हैरत होगी कि अंग्रेज़ी में जहाँ क़रीब साढ़े सात लाख शब्द शामिल हो चुके हैं, वहीं हिंदी में मुश्किल से ढाई लाख! ऐसा इसलिए कि हम तत्सम के आग्रह के चलते बोलचाल के शब्द हिंदी शब्दकोश में शामिल नहीं करना चाहते। इससे दुनिया में किस भाषा का कार्य-व्यवहार बढ़ेगा, क्या यह भी बताने की ज़रूरत है?

हिन्दी में लाख राष्ट्रभाषा बनने की क्षमता हो, वह कितनी ही वैज्ञानिक और व्यावहारिक हो, फिर भी अब जो स्थितियाँ-परिस्थितियाँ हैं, उन्हें देखते हुए, उसे राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न अब छोड़ देना चाहिए। इसके कई कारण हैं। पहला, यह कि अब उसकी जगह अंगरेजी ने ले ली है और उसको हटाना संभव नहीं है। दूसरे, हिंदी को राजभाषा का संवैधानिक दर्जा हासिल है और वह राजकाज तक ही सीमित है, बल्कि देश के एक तिहाई भाग में ही। शेष में अंग्रेजी का ही वर्चस्व है। हिंदी राजभाषा बन गई है, यह गनीमत ही समझिए, इससे अधिक उसकी न क्षमता है और न ही व्यावहारिकता। हम भले ही देश-दुनिया के महापुरुषों और अहिंदी भाषियों के हिंदी-प्रेम संबंधी उद्धरण प्रस्तुत करते रहें और उन्हें पढ़-सुन कर प्रसन्नता का अनुभव करते रहें। तीसरे, हिंदी बाजार की भाषा है- वह चाहे लोकतंत्र का बाजार हो, यानी राजनीति हो, अर्थतन्त्र का बाजार हो, कला-संस्कृति का अथवा धर्म-पाखंड और अध्यात्म का। भारत के अधिकांश लोग हिंदीभाषी हैं, तभी हिंदी बाजार की भाषा बनी है, लेकिन अपनी इस क्षमता तथा भाषिक वैज्ञानिकता के आधार पर वह राष्ट्र की भाषा नहीं बन पा रही है।

यह राजभाषा अधिनियम का ही प्रभाव है कि कुछ प्रदेश ऐसे हैं जिन्होंने अपने प्रदेश में हिंदी लागू कर रखी है। यह अच्छी बात है कि जिस भाषा को प्रदेशवासी समझते हों, उसी में कानून बनाया जाना चाहिए। लोगों से पत्राचार किया जाना चाहिए, जैसे— उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड। पर यह क्या बात हुई कि जिस प्रदेश में जो भाषा बोली ही न जाती हो, वह उसके काम-काज की भाषा हो! यह तो वही वाली बात हुई कि बंगाल में बोली तो बंगाली जाती है, लेकिन उसकी भाषा हो हिंदी! इसी प्रकार कश्मीर, पंजाब, असम, आन्ध्र, तमिलनाडु के राजकाज की भाषा हिंदी कैसे हो सकती है?

हिंदी से तो केवल हिंदीभाषी प्रदेशों में काम चलेगा। जब केन्द्र से बात करनी होगी या लिखा-पढ़ी करनी होगी, तो अंग्रेजी का सहारा लेना ही पड़ेगा। यही राजभाषा अधिनियम भी कहता है। इसलिए अंग्रेज़ी तो सीखनी ही पड़ेगी। गरज यह कि पढ़ा-लिखा भारतवासी चाहे जिस प्रदेश का रहनेवाला हो, बिना अंग्रेजी के कैसे रह सकता है? कक्षा छह से ए.बी.सी.डी. पढ़ने वाले भले ही अपनी ज़िंदगी जैसे-तैसे काट लेंगे, लेकिन बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाये बिना कोई ढंग की नौकरी कैसे दिलायेंगे? इसीलिए तो गली-गली अंग्रेज़ी मीडियम के स्कूल खोले गये हैं। आप हिंदी-हिंदी करते रहिए।

संविधान के अनुसार, संसद, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में भी अंतिम रूप से प्रभावी भाषा अंग्रजी ही है। उच्चतम न्यायालय अंग्रेजी में सुनता-बोलता और लिखता है। उच्च न्यायालयों का भी यही हाल है। एकाध न्यायमूर्ति हिंदी में अन्तरिम आदेश लिखा देते हैं, निर्णय लेकिन अंग्रेजी ही में लिखाते हैं। उसमें आने वाले उद्धरणों को आप हिंदी में कैसे लिखेंगे और कैसे विवेचित करेंगे? फिर लैटिन के वाक्यांश जो न्यायायिक उद्घोषणाओं की रीढ़ हैं, उनका अनुवाद हिंदी में कैसे हो?अंग्रेजी से वैर रखकर आप देश की व्यवस्था कैसे चलायेंगे? विदेश से बातचीत, विमर्श, संधि, आयात-निर्यात आदि के लिए अंग्रेजी के बिना कैसे काम चलेगा। इसलिए अंग्रेजी देश की जरूरी भाषा है। सवाल सिर्फ इतना है कि क्या देश के भीतर का काम-काज हिंदी से हो सकता है, शिक्षा का कार्य सम्पन्न हो सकता है, राजनीति, व्यापार आदि के प्रसंग हिंदी-केंद्रित हो सकते हैं? अंग्रेजी का भविष्य इसलिए सुरक्षित है। आपको अंग्रेजी के विरुद्ध नारेबाजी करनी है, तो करते रहिए।

यह तो संसद-न्यायालय का मामला है, लेकिन अंग्रेज़ी जो हिंदीवालों के दिल में पल रही है, उसका क्या हो? मध्यवर्गीय हिंदीभाषी खुद निमंत्रण-पत्र अंग्रेजी में छपवाता है। शायद उसे बच्चों के दोस्तों के घरवालों को अंग्रेज़ी में रौब झाड़नी है। अगर कार्ड हिंदी में हो, तो सोचिए, उसे कितनी शर्म आए! फिर हिंदीवाले के बच्चे तो अंग्रेजी मीडियम वाले ही हैं! जब हम अपने ही परिवार में हिंदी नहीं लागू कर पा रहे हैं, तो देश की क्या बात करें? लेकिन वह चाहता है कि बाबू मोशाय हिंदी सीखें, पर वह स्वयं बंगला नहीं सीखता। एक को हिंदी नहीं आती, तो दूसरे को बंगला। लेकिन अंग्रेजी दोनों को आती है। फिर भी हिंदीवाला हिंदी की दुर्दशा पर आँसू बहाएगा।

अब यह बात भी समझ ली जाए कि अंग्रेजी कैसे हमारी दिनचर्या में घर कर चुकी है? उसको बोलने वालों का विश्व-प्रतिशत भले ही पाँच-छह हो, मगर वह इंटरनेट की भाषा है। दुनिया में सबसे अधिक पढ़ी-लिखी और बोली जाने वाली भाषा है। इस नाते वह अघोषित रूप से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन चुकी है। उसके मुक़ाबले में हिंदी को बहुत आगे आने की जरूरत है, तभी कुछ बात बनेगी। यह सच है कि हिंदी अधिकांश भारतवासियों की मातृभाषा है, बोलचाल भाषा है, लेकिन शिक्षा और सरकारी कामकाज को लेकर इसकी कुछ सीमाएं भी हैं।

कोई माने, न माने, लेकिन उच्च शिक्षा, नौकरी के अवसर और विश्वव्यापी बाजार के चलते हिंदी का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया है।

इसके अलावा, हिंदी में ऐसे-ऐसे पारिभाषिक शब्द गढ़े हैं कि संस्कृत वाले चकरा जाएँ। बोलचाल की हिंदी वाला सिर खुजाता ही रह जाएगा। हिंदी बनी है बोलियों से— उर्दू और फारसी के शब्दों से, लेकिन हिंदी पट्टी के लोग उर्दू और फारसी को मुसलमानों की भाषा मानकर उनके प्रचलित शब्दों से भी दूरी बनाकर चलते हैं। नतीज़ा यह है कि हिंदी आमजनों की भाषा होकर भी प्रशासन की भाषा और विद्यालयों-विश्वविद्यालयों की भाषा नहीं बन पायी। एक ओर तो हिंदी में लेखा, वाणिज्य, विज्ञान, विधि, तकनीक सम्बन्धी सरल-सुबोध साहित्य नहीं मिलता, दूसरी ओर अप्रचलित शब्दों और पदों से उसे इतना दुरूह बना दिया गया है कि प्रयोक्ता को लगता है कि इससे अंग्रेजी ही भली!

सामाजिक दृष्टि से भी, हिंदी और अंग्रेज़ी का जो नाता है, उसे भी समझना होगा। बोलचाल की हिंदी आज गँवारों की भाषा बन चुकी है। हिंदी प्रदेश में भी वह 'भइया' लोगों की भाषा है, पढ़े-लिखों की भाषा नहीं बन पाई है।सामाजिक व्यवहार में भी अंग्रेज़ी छाई हुई है। घरों की नेम्प्लेट से लेकर दुकानों के साइनबोर्ड अंग्रेज़ी के रंग में रँगे हुए हैं। दिनचर्या में बोलचाल के शब्दों का स्थान भी अंग्रेज़ी ने ले लिया है— नाश्ते को ब्रेकफ़ास्ट, दोपहर के खाने को लंच, रात के खाने को डिनर आज सभी कहते हैं— क्या बच्चे-जवान और क्या बूढ़े! टूथपेस्ट को मंजन कहने वाले को लोग अचरज से देखने लगते हैं। मध्य वर्ग और निम्न-मध्य वर्ग के बच्चे अंग्रेज़ी मीडियम के स्कूलों में जाते ही हैं। फिर अंग्रेज़ी के रंग से परिवार कैसे बच सकता है?

प्रासंगिक तथ्य यह है कि जब अंग्रेज देश में आए थे, तब मुश्किल से एक-दो प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी जानते-बोलते थे; बल्कि व्यापारियों में तो कोई अपवादस्वरूप ही अंग्रेजी जानता होगा, लेकिन चालीस-पचास सालों में ही अंग्रेजों ने हिंदुस्तानियों को अंग्रेजी भाषा को समझने और बोलने योग्य बना लिया और ईस्ट इंडिया कंपनी की पाँव जमाते-जमाते सब काम-काज अंग्रेजी में होने लगे।

आखिर यह कैसे हुआ होगा? अगर अंग्रेज न चाहते तो क्या ऐसा हो पाता! लेकिन अपने देश में आजादी के इतने सालों बाद आज हम हिंदी को अंग्रेजी की जगह नहीं ला पाए, जबकि हिंदी को आधे से अधिक लोग आजादी के समय ही बोलते-लिखते थे और आज तो उनकी संख्या और अधिक है। हिंदी की प्रकृति भी अंग्रेजी के मुकाबले सरल और वैज्ञानिक है। फिर भी अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ रहा है। ऐसा क्यों है? यह सहज विचारणीय है।

अब अगर कुछ किया जा सकता है तो बस इतना ही कि हिंदी की बोलियों और प्रादेशिक भाषाओं से प्रचलित शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों आदि को ग्रहण किया जाए ताकि हिंदी का व्यापक संसार और समृद्ध हो सके और प्रांतीय भाषाएं बोलने वाले लोगों को हिंदी अजनबी भाषा न लगे। आज हिंदी के तमाम साधक चुपचाप अपना काम कर रहे हैं। राजभाषा के माध्यम से हिंदी का पर्याप्त प्रचार-प्रसार हो रहा है। अहिंदी भाषी भी इस अभियान में जुड़ रहे हैं। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में, भले उनका योगदान कुछ कम है, परंतु प्रयास तो जारी हैं। यह तोष की बात है।

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं एवं उ.प्र.हिन्दी संस्थान के श्रीनारायण चतुर्वेदी और महावीरप्रसाद द्विवेदी नामित व्यंग्य और निबंध पुरस्कारों सहित देश की अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित हैं।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

एकात्म आरोग्य: स्वास्थ्य संचार की भारतीय दृष्टि

भारतीय चिंतन में स्वास्थ्य कभी भी केवल रोग का अभावमात्र नहीं रहा। सुश्रुत संहिता के सूत्रस्थान में स्वस्थ व्यक्ति का जो लक्षण बताया गया है, वह इस दृष्टिकोण का सबसे संक्षिप्त और सघन प्रमाण है: *"समदोषःसमाग्निश्चसमधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।"* अर्थात, जिसके वात-पित्त-कफ (दोष) संतुलित हों, पाचन (अग्नि) ठीक हो, धातु और मल की क्रियाएँ सामान्य हों, और इसके साथ ही जिसकी आत्मा, इंद्रियाँ तथा मन प्रसन्न हों, केवल वही व्यक्ति स्वस्थ कहलाएगा।



सचित्र मिश्र

स्वास्थ्य शब्द पर विचार करते ही मन में एक प्रश्न उठता है कि कोई मनुष्य कब स्वस्थ माना जाएगा? इसका उत्तर जितना सरल प्रतीत होता है, वास्तव में उतना सरल नहीं है। क्या वही स्वस्थ हैजिसकी नाड़ी नियमित चले, रक्तचाप संतुलित रहे और जिसकी किसी मेडिकल जाँच में रोग की पुष्टि न हो? यदि इसका उत्तर 'हाँ'है, तो हमें यह मान लेना पड़ेगा कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने मनुष्य जाति को इतिहास के किसी भी अन्य कालखंड की तुलना में अधिक स्वस्थ बना दिया है। ऐसा इसलिए, क्योंकि आज जीवन प्रत्याशा जितनी अधिक है उतनी पहले कभी नहीं रही, और जिन रोगों को कभी असाध्य समझा जाता था उनमें से अनेक का उपचार आज सुलभ हो गया है। किंतु, यदि केवल यही उत्तर पर्याप्त होता तो, सर्वाधिकसाधन-संपन्न समाजों में अवसाद, व्यसन, एकाकीपन और आत्महीनता उसी अनुपात में क्यों बढ़ते चले गए, जिस अनुपात में चिकित्सा सुविधाएँबढ़ीं?यह विसंगति इस बात का स्पष्ट संकेत है कि रोग का अभाव और आरोग्य की उपस्थिति ये दोनों बिल्कुल भिन्न वस्तुएँ हैं और जिस दिन से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इन दोनों को एक मान लिया,उसी दिन से इस विसंगति ने जन्म लिया।

यह विसंगति उस एकांगी दृष्टिकोण की उपज है जिसने मनुष्य को खंडों में देखा और फिर प्रत्येक खंड के लिए एक अलग विशेषज्ञ बना दिया। शरीर के लिए चिकित्सक, मन के लिए परामर्शदाता, समाज के लिए प्रशासक और आत्मा के लिए कोई नहीं। ऐसा इसलिए है,क्योंकि आधुनिक चिकित्सा तंत्र की शब्दावली में आत्मा नाम की कोई इकाई बची ही नहीं है। जब मनुष्य को इस प्रकार खंडों में बाँट दिया जाए, तो उसे जोड़कर पुनः पूर्ण करने का कोई उपाय शेष नहीं बचता।शरीर को केवल एक जटिल यंत्र और रोग को उस यंत्र की विकृति मानकर चलने वाली दृष्टि हमें केवल उपचार दे सकती है, जीवन का संतुलन नहीं दे सकती।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी स्थापना के समय ही इस संकट का आभास कर लिया था। सन् 1946 में स्वीकृत और 1948 में लागू हुए अपने संविधान की प्रस्तावना में, इसने स्वास्थ्य को शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की पूर्ण अवस्था माना और यह स्पष्ट किया कि यह केवल रोग अथवा दुर्बलता का अभाव नहीं है।तीन दशक बाद,उसी संगठन के भीतर से यह स्वर उठने लगा कि यह परिभाषा अब भी अधूरी है। सन् 1978 में कार्यकारी परिषद के समक्ष यह आग्रह किया गया कि स्वास्थ्य के आध्यात्मिक आयाम पर भी विचार होना चाहिए।सन् 1983 की 36वीं विश्व स्वास्थ्य सभा में यह प्रश्न विधिवत रूप से उठा और अनेक सदस्य देशों ने एक संकल्प का प्रारूप प्रस्तुत किया। अंततः सन् 1984 में 37वीं विश्व स्वास्थ्य सभा ने उस संकल्प को स्वीकार कर लिया, जिसमें सभी के स्वास्थ्य की वैश्विक रणनीति में आध्यात्मिक आयाम को शामिल करने का आह्वान किया गया था। हालाँकि, संविधान की मूल परिभाषा में संशोधन तब भी नहीं हो सका, क्योंकि आध्यात्मिकशब्द की परिभाषा पर आम सहमति नहीं बन पाई, और वह प्रश्न आज तक स्थगित है।

इस पूरे प्रकरण को भारतीय दृष्टि से देखने पर एक विस्मयकारी तथ्य सामने आता है। जिस चतुर्विध मनुष्य (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक) तक पहुँचने में विश्व की सर्वोच्च स्वास्थ्य संस्था को चार दशक लग गए और जहाँ पहुँचकर भी वह ठिठक गई, उसे पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने सन् 1965 के अपने व्याख्यानों में एक सहज स्वीकृत आधार की भाँति प्रस्तुत किया था। यह लेख उसी संकल्पना की पड़ताल करता है, और साथ ही इस प्रश्न पर भी विचार करता है कि आरोग्य की संकल्पना बदल जाने पर उसके संचार का स्वरूप किस प्रकार बदलना चाहिए।

भारतीय चिंतन में स्वास्थ्य

भारतीय चिंतन में स्वास्थ्य कभी भी केवल रोग का अभावमात्र नहीं रहा। सुश्रुत संहिता के सूत्रस्थान में स्वस्थ व्यक्ति का जो लक्षण बताया गया है, वह इस दृष्टिकोण का सबसे संक्षिप्त और सघन प्रमाण है: *"समदोषःसमाग्निश्चसमधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।"* अर्थात, जिसके वात-पित्त-कफ (दोष) संतुलित हों, पाचन (अग्नि) ठीक हो, धातु और मल की क्रियाएँ सामान्य हों, और इसके साथ ही जिसकी आत्मा, इंद्रियाँ तथा मन प्रसन्न हों, केवल वही व्यक्ति स्वस्थ कहलाएगा। इस परिभाषा की संरचना पर ध्यान देना चाहिए। इसका पहला भाग शरीर से और दूसरा भाग चेतना से जुड़ा है, और ये दोनों आपस में अनिवार्य रूप से जुड़े हैं, किसी विकल्प के रूप में नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर का निरोगी होना स्वास्थ्य की आवश्यक शर्त तो है, लेकिन यह अपने आप में पूर्ण शर्त नहीं है। यदि किसी व्यक्ति की सभी मेडिकल जाँचें सामान्य हों किंतु उसका मन अप्रसन्न हो, तो आयुर्वेद उसे स्वस्थ नहीं मानता। जो लोग भारतीय परंपरा को देह-विमुख (शरीर की उपेक्षा करने वाली) और वैराग्य-ग्रस्त कहकर खारिज करते हैं, उन्हें यह श्लोक एक साथ दो उत्तर देता है। यह परंपरा न तो शरीर की उपेक्षा करती है, और न ही केवल शरीर तक सीमित रहती है।

स्वस्थशब्द स्वयं इस दृष्टिकोण को अपने भीतर समेटे हुए है। 'स्व' (स्वयं) में स्थित होना ही स्वास्थ्य है। यह किसी बाहरी पैमाने से मापी गई अवस्था नहीं है, बल्कि अपने मूल स्वभाव में प्रतिष्ठित होने की अवस्था है। आधुनिक प्रयोग में यह सिकुड़कर केवल बीमारी के अभाव तक सीमित रह गया है। भाषा का यह संकुचन केवल शब्दों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह उस समाज की संकुचित दृष्टि का प्रमाण भी है।शरीर के प्रति भारतीय दृष्टिकोण का संतुलन कालिदास की एक पंक्ति में जितना स्पष्ट होता है, उतना शास्त्रों के लंबे विवेचन में भी नहीं मिलता: *"शरीरमाद्यंखलुधर्मसाधनम्"* अर्थात शरीर ही धर्म का प्रथम साधन है। इस एक वाक्य में अतियों का निषेध किया गया है। जो व्यक्ति शरीर को ही अंतिम लक्ष्य या साध्य मान लेता है, वह भोग-विलास में डूब जाता है; और जो इसे शत्रु मान बैठता है, वह अपने ही साधन को नष्ट कर देता है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधन की रक्षा आवश्यक है, यही विवेक भारतीय आरोग्य की समझ का केंद्र है। यहाँ आरोग्य अधिकार से पहले एक कर्तव्य है, और यही अंतर आगे चलकर जन स्वास्थ्य संचार के धरातल पर निर्णायक सिद्ध होता है।

एकात्म मानव दर्शन में मनुष्य और समाज

अप्रैल 1965 में मुंबई में दिए गए अपने चार व्याख्यानों में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने जिस 'एकात्म मानव दर्शन' का प्रतिपादन किया, उसका मूल स्वर यही है कि मनुष्य को अलग-अलग हिस्सों में बाँटकर देखना ही आधुनिक युग की सारी विडंबनाओं की जड़ है। मनुष्य शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समन्वय है। ये चार अलग-अलग इकाइयाँ नहीं हैं जिन्हें जोड़कर मनुष्य बनाया गया हो; बल्कि ये एक ही जीवन के चार आयाम हैं। पश्चिमी चिंतन की परंपरा ने प्रायः इन आयामों को एक-दूसरे के विरोध में खड़ा किया है। कहीं शरीर को आत्मा की जेल कहा गया, तो कहीं आत्मा को शरीर का भ्रम माना गया। इस द्वैतभाव ने जिस सभ्यता का निर्माण किया, उसने या तो पूर्ण भोगवाद को जन्म दिया या पूर्ण संन्यास को, और इन दोनों ने ही मनुष्य को अधूरा छोड़ दिया। एकात्म दृष्टि इस द्वंद्व को पूरी तरह अस्वीकार करती है। यह मानती है कि जिस प्रकार अन्न से रस, रस से रक्त और रक्त से आगे की धातुएँ बनती चली जाती हैं, उसी प्रकार जीवन के ये आयाम एक-दूसरे से अनुस्यूत हैं। किसी एक की उपेक्षा शेष तीनों को कमजोर कर देती है।

चतुर्विध पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की जो प्राचीन योजना है, वह इसी दृष्टिकोण का व्यावहारिक परिणाम है। ये चारों अलग-अलग जीवन शैलियाँ नहीं हैं, बल्कि एक ही जीवन के चार उद्देश्य हैं। इनमें अर्थ और काम का स्थान भी उतना ही वैध है जितना धर्म और मोक्ष का। जिस चिंतन में 'अर्थ' (धन) और 'काम' (इच्छाओं) को वैधता प्राप्त हो, वह चिंतन शरीर के पोषण, आवास, पर्याप्त आहार और चिकित्सा की उपेक्षा कर ही नहीं सकता। दीनदयाल जी ने अपने आर्थिक चिंतन में जीवन के जिस न्यूनतम स्तर की चर्चा की थी, उसका आशय भी यही था कि समाज का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने प्रत्येक सदस्य के लिए मूलभूत आवश्यकताओं का प्रबंध सुनिश्चित करे। इसमें अन्न और वस्त्र के साथ चिकित्सा भी अनिवार्य रूप से शामिल है, क्योंकि जिस शरीर को धर्म का साधनकहा गया है, उसे बीमार छोड़ देना समाज का अपने धर्म से भटकना है।यदि इस दृष्टिकोण को स्वास्थ्य पर लागू किया जाए, तो परिणाम बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। जो चिकित्सा तंत्र केवल शरीर का इलाज करता है, वह उतना ही अधूरा है जितना वह उपदेश जो केवल आत्मा की बात करके शरीर को उसके भाग्य पर छोड़ देता है। पूर्ण आरोग्य वह है जिसमें शरीर सक्षम हो, मन प्रसन्न हो, बुद्धि विवेकशील हो और आत्मा किसी बड़े उद्देश्य से जुड़ी हो। जिस समाज में मनुष्य के पास जीने का कोई उद्देश्य न बचे, वहाँ शरीर की सारी जाँचें सामान्य आने पर भी व्यक्ति स्वस्थ नहीं होता। यह केवल एक दार्शनिक कथन नहीं है। आँकड़े गवाह हैं कि जिन समाजों में भौतिक साधन सर्वाधिक हैं, प्रायः उन्हीं समाजों में अवसाद, आत्महत्या और व्यसन की दर सबसे अधिक है।

समाज केवल व्यक्तियों की यांत्रिक भीड़ नहीं है। समाज स्वयं एक जीवंत इकाई है, जिसका अपना स्वभाव, अपनी अंतःप्रकृति और अपनी आयु है। इस अंतःप्रकृति को दीनदयाल जी ने 'चिति' कहा है, और उस सामूहिक रूप को 'विराट' कहा है जिसमें व्यक्तियों की शक्ति संगठित होकर प्रकट होती है।यदि समाज जीवंत है, तो उसका भी अपना आरोग्य और अपना रोग होगा। जन स्वास्थ्य की समूची अवधारणा को यहीं से अपनी दार्शनिक जमीन मिलती है। जन स्वास्थ्य किसी एक रोगी की चिकित्सा नहीं है, बल्कि यह पूरी समष्टिके स्वास्थ्य का विज्ञान है। पश्चिमी व्यक्तिवादी सोच को इस

विज्ञान के लिए तार्किक आधार जुटाने में हमेशा कठिनाई हुई है; क्योंकि जहाँ समाज को केवल व्यक्तियों का एक समझौता माना जाता हो, वहाँ यह सिद्ध करना कठिन हो जाता है कि कोई एक व्यक्ति दूसरों के स्वास्थ्य के लिए अपनी स्वतंत्रता को सीमित क्यों करे। कोरोना महामारीके दौरान पूरी दुनिया ने इस असमंजस को देखा। जो समाज मनुष्य को पूर्णतः स्वतंत्र और अलग इकाई मानकर चला था, वहाँ मास्क पहनने जैसी साधारण बात भी अधिकारों की लड़ाई बन गई।भारतीय दृष्टिकोण में यह असमंजस पैदा ही नहीं होता, क्योंकि यहाँ व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। यह कोई आधुनिक व्याख्या नहीं है।

चरक संहिता के विमान स्थान में जनपदोद्ध्वंस (महामारी) का जो विवेचन है, वह संभवतः विश्व चिंतन में सामूहिक स्वास्थ्य की सबसे प्राचीन और व्यवस्थित प्रस्तुति है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि वायु, जल, देश और काल जब दूषित हो जाते हैं, तो वे भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले सभी लोगों को एक समान रूप से बीमार करते हैं। यह वाक्य आधुनिक जन स्वास्थ्य की आधारशिला है, क्योंकि यहाँ रोग का कारण व्यक्ति के शरीर में नहीं, बल्कि समाज के पर्यावरण में खोजा गया है।इससे भी गहरी बात चरक संहिता मेंहै, जहाँ इन प्राकृतिक तत्त्वों के दूषित होने का मूल कारण अधर्मऔर अधर्म का मूल कारण प्रज्ञापराधअर्थात सामूहिक बुद्धिभ्रंश बताया गया है। इसका तात्पर्य है कि समाज का सामूहिक विवेक जब भ्रष्ट होता है, तो वह अंततः पर्यावरण को दूषित करता है, और दूषित पर्यावरण लोगों के शरीर को बीमार करता है। पर्यावरण, नैतिकता और महामारी के बीच का जो संबंध आज की शोध-पत्रिकाएँ खोज रही हैं, वह हमारे शास्त्रों में सूत्र रूप में पहले से मौजूद है।

इसी दृष्टिकोण का प्रशासनिक उदाहरण सम्राट अशोक के शिलालेखों में दिखाई देता है। वहाँ मनुष्यों और पशुओं दोनों के लिए चिकित्सा की व्यवस्था करने, औषधीय वनस्पतियाँ रोपने, रास्तों पर कुएँ खुदवाने और पेड़ लगवाने का स्पष्ट उल्लेख है। यह सब किसी करुणा या दया भाव से किया गया दान नहीं था, बल्कि यह उस दर्शन का प्रशासनिक अनुवाद था जो पूरे समाज को एक शरीर मानता है और शासक को उस शरीर का सेवक।एकात्म दृष्टि यहाँ जन स्वास्थ्य को एक ऐसा आधार प्रदान करती है जो पाश्चात्य अधिकारवाद से कहीं अधिक टिकाऊ है। यदि समाज मेरा ही विस्तार है, तो पड़ोसी के स्वास्थ्य की चिंता करना मेरे लिए कोई परोपकार नहीं, बल्कि आत्मरक्षा है। इस भाव को जगाना ही 'जन स्वास्थ्य संचार'का वास्तविक लक्ष्य होना चाहिए।

स्वास्थ्य संचार की भारतीय दृष्टि

ज्ञान, दृष्टिकोण और व्यवहारकी जिस त्रिस्तरीय योजना को स्वास्थ्य अभियानों का आधार बनाया गया, उसकी मूल मान्यता यह थी कि यदि जनता को सही सूचना दे दी जाए तो उसका नजरिया बदलेगा, और नजरिया बदलने पर उसका आचरण बदल जाएगा। लेकिन दशकों के अनुभव ने इस सीधे समीकरण को गलत साबित कर दिया है। सिगरेट पीने के नुकसान जानने वाले लोग धूम्रपान करते रहे और साफ-सफाई का महत्व समझने वाले लोग गंदगी फैलाते रहे। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि मनुष्य का आचरण केवल सूचना से नहीं, विश्वास से बदलता है, और विश्वास संबंधों से पैदा होता है।महामारी के समय यही दूरी हर जगह दिखाई दी क्योंकि आदेश ऊपर से आते रहे और नीचे जनता का विश्वास टूटता गया।भारतीय दृष्टि में संचार केवल सूचना का लेन-देन नहीं है, बल्कि हृदयों की समरसता भी है। यह अवधारणा एकात्म मानव दर्शन से स्वाभाविक रूप से जुड़ती है। जहाँ समाज को एक जीवंत इकाई माना जाता है, वहाँ संचार दो अलग-अलग पिंडों के बीच की यात्रा नहीं रह जाता, बल्कि वह एक ही चेतना का अपने ही भीतर संचरण बन जाता है।व्यवहार में इसका अर्थ बहुत स्पष्ट है। एकात्म दृष्टि से किया गया स्वास्थ्य संचार जनता को समझानेके लिए नहीं बल्कि संबंध स्थापित करने के उद्देश्य से किया जाएगा। वह अपनी भाषा नहीं थोपेगा, बल्कि जनता के भावलोक में प्रवेश करेगा। इसका सबसे प्रामाणिक उदाहरण भारत का पोलियो उन्मूलन अभियानहै। जब तक यह अभियान बाहर से आए मेडिकल दलों के रूप में गाँवों में पहुँचता रहा, तब तक उन्हें दरवाजे बंद मिलते रहे। लेकिन जब उसी समाज के भीतर से विश्वसनीय लोगों, स्थानीय महिलाओं और धर्मगुरुओं को इस कार्य से जोड़ा गया, तो वे ही दरवाजे अपने आप खुल गए। तंत्र वही था, दवा वही थी, टीका भी वही था,जो बदला था, वह केवल संबंध था।

भाषा की चूक और उसका मूल्य

कोरोना महामारी के समय पूरी दुनिया में जिस शब्द का प्रचार हुआ, उसका हिंदी अनुवाद 'सामाजिक दूरी' के रूप में प्रचलित कर दिया गया। यह अनुवाद व्याकरण की दृष्टि से सही था, लेकिन अर्थ की दृष्टि से अत्यंत घातक था।मूल उद्देश्य शारीरिक अंतर बनाए रखना था, ताकि संक्रमण की शृंखलाटूट सके। किंतु सामाजिक दूरीका अर्थ कुछ और ही होता है।यही कारण है कि बाद में स्वयं विश्व स्वास्थ्य संगठन को आगे आकर इसकी जगह 'शारीरिक दूरी'शब्द को प्राथमिकता देनी पड़ी, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि दूरी शरीर की बनानी है, संबंधों की नहीं।यह उदाहरण अकेला नहीं है। हमारा पूरा का पूरा स्वास्थ्य संचार अनुवादपर टिका हुआ है, मौलिक चिंतन पर नहीं। पहले अंग्रेजी में कोई कांसेप्ट बनता है, फिर उसका हिंदी में मशीनी अनुवाद होता है, और अंत में उस अनुवाद को स्थानीय बोलियों में थोपने का प्रयास किया जाता है। इस तीन स्तरीय यात्रा में मूल भाव रास्ते में ही दम तोड़ देता है। परिणामस्वरूप, जो शब्दावली गाँवों तक पहुँचती है, वह न तो वैज्ञानिक रह जाती है और न ही आत्मीय। हमारे लोक जीवन में बीमारियों से बचाव की जो अपनी देशज समझ सदियों से मौजूद है, उसे पहचाने बिना नई तकनीकी शब्दावली थोप देने से न तो विज्ञान का कोई लाभ होता है, और न ही परंपरा का।

समाधान अनुवाद को सुधारने में नहीं, बल्कि सोचने की दिशा बदलने में है। संकल्पना पहले उसी भाषा में गढ़ी जानी चाहिए जिस भाषा में

उस समाज को जीना है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने जो मानक हिंदी शब्दावली बनाई है, वह एक उपयोगी आधार जरूर है; लेकिन एक मानक शब्द तब तक निर्जीव रहता है जब तक आम जनता उसे अपने मुहावरे में न ढाल ले। जीवंत भाषा वातानुकूलित प्रयोगशालाओं में नहीं, गाँव की चौपालों पर बनती है।

एकात्म स्वास्थ्य संचार के सूत्र

इस पूरे विवेचन से जन स्वास्थ्य संचार के लिए जो व्यावहारिक दिशा मिलती है, उसे हम निम्नलिखित पाँच सूत्रों में समेट सकते हैं:

1. **संचार लोकभाषा में हो, अनूदित भाषा में नहीं:** जिस भाषा में समाज सोचता है, सुख-दुख साझा करता है, स्वास्थ्य की बात भी उसी भाषा में होनी चाहिए। अवधी, भोजपुरी, बुंदेली और ब्रज जैसी बोलियों के पास शरीर, रोग और औषधियों का अपना बहुत समृद्ध शब्दकोश है। इसे उपेक्षित छोड़कर हमने अपनी ही भाषा को दरिद्र कर लिया है।

2. **संदेशवाहक समाज के भीतर से हो:** बाहर से आया कोई विशेषज्ञ सिर्फ सूचना दे सकता है, विश्वास नहीं जगा सकता। समाज में विश्वास केवल वही व्यक्ति पैदा कर सकता है जिसे समाज अपना मानता हो फिर चाहे वह आशा कार्यकर्ता हो, गाँव का शिक्षक हो, या कोई वयोवृद्ध महिला।

3. **संदेश भय पर नहीं, कर्तव्यबोध पर आधारित हो:** डर दिखाकर आप तत्काल आदेश का पालन तो करवा सकते हैं, लेकिन डर जितनी तेजी से आचरण बदलता है, उतनी ही तेजी से पुरानी स्थिति में लौटा भी देता है, और पीछे केवल अविश्वास छोड़ जाता है। इसके विपरीत, कर्तव्यबोध धीरे-धीरे जागता है, लेकिन स्थायी रहता है।

4. **लोक-परंपरा का खंडन नहीं, परिष्कार किया जाए:** जिस भारतीय समाज ने भोजन से पूर्व हाथ धोने को अपने दैनिक आचरण और संस्कार से जोड़ रखा था, उससे साफ-सफाई की बात उसकी परंपरा को नकार कर नहीं, बल्कि उसी परंपरा की स्मृति जगाकर की जानी चाहिए। अंधविश्वासों को छोड़ना अत्यंत आवश्यक है, लेकिन जो संचार-प्रणाली लोक-परंपरा और अंधविश्वास को एक ही पलड़े में तौलती है, वह समाज को अपना शत्रु बना लेती है।

5. **आरोग्य को अधिकार के साथ-साथ धर्मभी माना जाए:** अधिकारों का बोध माँग पैदा करता है, जो आवश्यक भी है क्योंकि इसी से सरकारें जवाबदेह बनती हैं। किंतु, केवल अधिकारों की बात नागरिक को सिर्फ एक याचकबनाकर छोड़ देती है। दूसरी ओर, धर्मका बोध व्यक्ति को कर्ताबनाता है। शरीर धर्म का साधन है, इसलिए उसकी रक्षा मेरा कर्तव्य है; और समाज मेरा ही विस्तार है, इसलिए समाज का स्वास्थ्य भी मेरा कर्तव्य है। यह दोहरा बोध ही एकात्म स्वास्थ्य संचार की असली आत्मा है।

अत: आरोग्य का प्रश्न वस्तुतः दृष्टिकोण का प्रश्न है। जिस दृष्टिकोण में मनुष्य केवल हाड़-मांस का शरीर है, वहाँ चिकित्सा सिर्फ एक सेवाया उत्पादबन जाती है जिसे कोई बेचता है और कोई खरीदता है। इसके विपरीत, जिस दृष्टिकोण में मनुष्य शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की एक अविभाज्य इकाई है, और जहाँ समाज उसी इकाई का विस्तार है, वहाँ आरोग्य एक साझी साधनाबन जाता है।भारत को इस समय स्वास्थ्य संचार के किसी आयातित विदेशी मॉडल की आवश्यकता नहीं है। उसे अपनी 'चिति'के अनुरूप एक ऐसा मॉडल चाहिए जो उसकी अपनी भाषा से निकले, उसके लोक जीवन में प्रमाणित हो, और उसके अपने दर्शन से पोषित हो। इस नए मॉडल के बीज हमारे पास पहले से सुरक्षित हैं। आचार्य सुश्रुत ने इसके लक्षण तय किए, आचार्य चरक ने इसका सामाजिक विस्तार किया, और पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने आधुनिक शब्दावली में इसकी दार्शनिक पुनर्रचना कर दी।स्वस्थ वह नहीं है जिसकी केवल मेडिकल रिपोर्ट सामान्य आई हो। पूर्ण रूप से स्वस्थ वह है जो अपने 'स्व' में स्थित हो, और जिसका 'स्व' अपने समाज और परिवेश से कटा हुआ न हो।

लेखक सचित्र मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग में जूनियर रिसर्च फ़ेलो हैं।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

लोक भाषा, राष्ट्रभाषा से राजभाषा तक

भारतीय भाषाओं में ज्ञान की अथाह राशि संचित है इसलिए हर बोली-भाषा को संरक्षण मिलना चाहिए। उनका विकास, विस्तार होना चाहिए। इसलिए अवधी, बुंदेली, भोजपुरी, राजस्थानी, कन्नौजी, ब्रज, पहाड़ी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, ब्रज, मालवी, हरियाणवी, छत्तीसगढ़ी सहित देश की सभी बोलियों- भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाये लेकिन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व एवं प्रभाव को देखते हुए संविधान की भावना के अनुरूप हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया जाए।

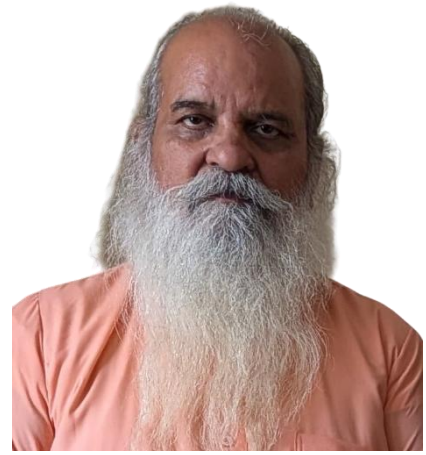

डॉ. विनोद बब्बर

प्रकृति ने भारत को अनेकानेक वरदान दिये हैं। हिमाच्छादित पर्वत, रेगिस्तान, पठार, समतल मैदान, नदियां, झीले, समुद्र, अनंत प्रकार के फल-फूल, हर कोस पर बदलता पानी का स्वाद, हर दो कोस पर बदलता वाणी का स्वर हमें विविधता लेकिन समृद्ध एकात्मकता प्रदान करता है। हजारों बोलियों-भाषाएं इस धरती की खूबसूरती है। ये बोलियां-भाषाएं संस्कृति की वाहिनियां हैं। इन्हीं से संवाद है। सम्पर्क है। व्यापार है। व्यवहार है। इनके बिन लोक गूंगा है क्योंकि इन्हीं से लोक संस्कृति है। सभी तीर्थों मेलों और धर्म स्थलों पर परस्पर बोलचाल का माध्यम किसी न किसी न किसी रूप में हिंदी ही होती है। इस प्रकार हिंदी निश्चय ही, देश में परस्पर सम्पर्क और एकता की भाषा है। यह देश की सामासिक संस्कृति की भाषा है। इसी में देश की आत्मा निवास करती है। राष्ट्र की अस्मिता की पहचान भी इस से है।

माँ की लौरी से प्रारंभ हुआ भाषा का प्रवाह, अपने प्रभाव से हमारे जीवन मूल्यों का पोषण करता है। ममता, वात्सल्य, स्नेह, प्रेम, श्रद्धा को विशाल क्षितिज प्रदान करने वाले शब्द ही हमारी भाषाओं में विद्यमान है परंतु कोई विदेशी भाषा यह कार्य नहीं कर सकती क्योंकि निज भाषा में जो संवेदनात्मकता होती है, अन्यत्र उसे ढूंढना व्यर्थ है। उदाहरण के तौर पर 'गुरु' शब्द की पड़ताल की जाए तो हम देखते है कि इस शब्द में जो गुरुता है वह 'टीचर' में नहीं है। यह अंतर दो भाषाओं के गहरे सांस्कृतिक अंतर के कारण ही है। गुरु शब्द से जिस श्रद्धा की अनुभूति होती है वह टीचर में कहां? लोकभाषा में पवन शब्दों की अर्थ छटाएँ अलग-अलग हैं। इसके लिए हवा, बतास, बयार, पवन, बगुला, आँधी, अँधड़, बवण्डर, बुढिया, घुमरी, चकरी झाँक, लूक, भूतरा, फगुनहट, सिरवाई, पुरवाई, आदि शब्दों प्रयोग में लाए जाते हैं। यह उदाहरण बताता है कि लोक अपने परिवेश के प्रति सदा से सजग रहा है। जो हमारी भाषायी सम्पन्नता को नहीं समझता, वह भारत और भारतीय संस्कृति के मर्म को समझ ही नहीं सकता।

1782 में, हैनरी ब्रुक ने कहा है, 'जिस भाषा का व्यवहार भारत के प्रत्येक प्रांत के लोग करते हैं। जो पढ़े-लिखे तथा अनपढ़ दोनों की साधारण बोलचाल की भाषा है और जिसे प्रत्येक गांव में थोड़े बहुत पढ़े लिखे लोग समझते हैं, उसका नाम हिंदी है।' समय-समय पर भारत को जानने जो विद्वान यहां आये उन्होंने अपने अनुभवों में इस बात को स्वीकारा है कि जब दो भिन्न प्रान्तों, समुदायों और भाषा भाषी आपस में संवाद करते हैं तो हिंदी उनकी मदद करती है। इसलिए लोक भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हिन्दी केवल एक भाषा अथवा बोली नहीं अपितु एक सामाजिक भाषा परम्परा की संज्ञा है, जिसका आकार-प्रकार विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों के ताने-बाने द्वारा निर्मित हुआ है।

हमारे संविधान की आठवीं अनुसूची में प्रमुख भाषाओं को शामिल किया गया है। अनेक अन्य बोलियों-भाषाओं को भी इस सूची में शामिल करने की मांग की जा रही है। भारतीय भाषाओं में ज्ञान की अथाह राशि संचित है इसलिए हर बोली-भाषा को संरक्षण मिलना चाहिए। उनका विकास, विस्तार होना चाहिए। इसलिए अवधी, बुंदेली, भोजपुरी, राजस्थानी, कन्नौजी, ब्रज, पहाड़ी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, ब्रज, मालवी, हरियाणवी, छत्तीसगढ़ी सहित देश की सभी बोलियों- भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाये लेकिन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व एवं प्रभाव को देखते हुए संविधान की भावना के अनुरूप हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया जाए। हिंदी की सहयोगी विविध बोलियाँ सदियों से हमारे घर-आँगन से संस्कृति और परम्पराओं की संवाहिका बनी हुई हैं। लेकिन इस बात से भला किसे इंकार होगा कि इन बोलियों-भाषाओं की प्रभाव एक प्रदेश अथवा उसके एक आंचल तक ही हो सकता है परंतु हिंदी समस्त भारत में किसी न किसी रूप में बोली और समझी जाती है।

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे कारगिल से कन्याकुमारी, कच्छ से कामरूप तक भारत के सभी राज्यों में प्रवास का अवसर मिला। हर

प्रांत, हर स्थान पर हिंदी देश की एकता की कुंजी के रूप में मेरे साथ रही। यह केवल मेरी नहीं, हर भारतीय की शक्ति है। सशक्त एकता की इसी कड़ी के बल पर हमने स्वतंत्रता संग्राम में विजय प्राप्त की। गाँधी, सुभाष, टैगोर, तिलक, भगतसिंह, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, लाला लाजपत राय हिंदी भाषी नहीं थे लेकिन बात मातृभाषा की नहीं, मातृभूमि की थी। सभी ने एक स्वर में, हिंदी के माध्यम से सोये हुए पूरे देश को जगाया। तमिल भाषी राष्ट्रकवि सुब्रहमण्यम भारती ने 1906 में अपनी पत्रिका 'इंडिया' के कुछ पृष्ठ हिन्दी के लिए आरक्षित करते हुए सभी से हिंदी सीखने की अपील की। मराठी भाषी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 1905 में सबसे पहले घोषणा की कि हिंदी ही भारत की सर्वमान्य भाषा हो सकती है और देवनागरी लिपि वैकल्पिक रूप से भारत की सभी भाषाओं के लिए प्रयुक्त की जानी चाहिए।

स्वतंत्रता के बाद हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा अनुच्छेद 351 में हिंदी को भारत की सामासिक संस्कृति की प्रतिनिधि भाषा के रूप में विकसित करने का निर्देश इस बात का द्योतक है कि हिंदी भारत की प्रतिनिधि भाषा के रूप में अपना कार्य करेगी। संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। राजनीतिक लाभ के लिए कुछ लोगों द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले विवादों के कारण वर्तमान में राजभाषा के रूप में विराजित अंग्रेजी की स्थिति अस्थायी है, जिसे एक दिन हिंदी के लिए यह स्थान खाली करना ही होगा।

जो लोग राजभाषा के संबंध में भ्रम फैलते हैं उन्हें जानना चाहिए कि संविधान सभा में राजभाषा हिन्दी का मामला 14 जुलाई, 1947 के पहले ही सुलझ गया था। 14 जुलाई के पहले संविधान सभा में बहस का मुद्दा यह नहीं था कि देश की राजभाषा हिन्दी हो अथवा अंग्रेजी हो। बहस का मुद्दा यह था कि राजषाषा हिन्दी हो अथवा हिन्दुस्तानी हो। इसको विस्तार से समझने की जरूरत है। सन् 1928 में भारत को स्वतंत्र कराने वाली पार्टियों (जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग शामिल थीं) का स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए सम्मेलन हुआ। इसमें पंडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में तैयार रिपोर्ट में देश की सर्वमान्य भाषा 'हिन्दुस्तानी' मानी गई (रिपोर्ट, पृष्ठ 165-166)। सन् 1937 में प्रांतीय सरकार बनने पर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा - 'हर प्रांत की सरकारी भाषा राज्य के कामकाज के लिए उस प्रांत की भाषा होनी चाहिए। परन्तु हर जगह अखिल भारतीय भाषा होने के नाते 'हिन्दुस्तानी' को सरकारी तौर पर माना जाना चाहिए। अखिल भारतीय भाषा कोई हो सकती है तो वह सिर्फ हिन्दी या हिन्दुस्तानी कुछ भी कह लीजिए – ही हो सकती है'। (देखे राष्ट्रभाषा का सवाल, पृष्ठ 23 एवं पृष्ठ 33, अहमदाबाद (1949)।

सन् 1946 में संविधान सभा गठित हुई तथा इसकी पहली बैठक दिनांक 9 दिसम्बर, 1946 को हुई तथा दिनांक 11 दिसम्बर, 1946 की बैठक में राजेन्द्र प्रसाद इसके अध्यक्ष चुने गए। दिनांक 14 जुलाई,1947 की संविधान सभा के सत्र में यह प्रस्ताव आया कि 'हिन्दुस्तानी' के स्थान पर 'हिन्दी' को देश की सर्वमान्य भाषा माना जाए। इस मुद्दे पर विचार करने के लिए संविधान सभा के कांग्रेस पार्टी के सदस्यों की बैठक बुलाई गई। इस मुद्दे पर विचार विमर्श हुआ। कुछ सदस्यों ने हिन्दी के पक्ष में तथा कुछ सदस्यों ने हिन्दुस्तानी के पक्ष में अपने विचार व्यक्त किए। हिन्दी के पक्ष में सबसे अकाट्य दलीलें पुरुषोतम दास टंडन, सेठ गोविन्द दास, डॉ. रघुवीर तथा दक्षिण भारत के अधिकांश सदस्यों की थीं। जबकि अब्दुल कलाम आजाद आदि हिन्दुस्तानी के पक्ष में थे। इस मुद्दे पर जब सहमति नहीं बनी तब मतदान का निर्णय लिया गया। मतदान में हिन्दी के पक्ष में 63 मत पड़े तथा हिन्दुस्तानी के पक्ष में 32 मत पड़े।

संविधान सभा में भाषा विषयक बहस 278 पृष्ठों में मुद्रित है जिसका अधिकांश भाग अंकों के स्वरूप को लेकर हुई बहस से हैं। राजभाषा सम्बंधी विधेयक एकमत से पास हो इसके लिए डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी तथा श्री गोपाल स्वामी आयंगार की भूमिका महत्वपूर्ण रही। अंकों के मुद्दे पर उन्होंने देवनागरी के अंकों के प्रयोग का मोह त्यागने तथा अन्तरराष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करने के लिए वातावरण बनाने की कोशिश की। संविधान सभा के सदस्यों में से दो माननीय सदस्यों (श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी तथा मोटूरि सत्यनारायण) ने मुझे इस बात से अवगत कराया कि उनका तर्क था कि देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी को राजभाषा बनाने की बात उन सदस्यों ने स्वीकार कर ली है जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। इस कारण हिन्दी भाषा सदस्यों को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि वे अन्तरराष्ट्रीय अंकों के प्रयोग की बात मान लें जिससे राजभाषा सम्बंधी विधेयक सर्वसम्मति से पास हो सके। उनकी भूमिका के कारण यह सहमति बनी थी कि संघ की भाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। वास्तव में अंकों को छोड़कर संघ की राजभाषा के प्रश्न पर अधिकांश सदस्यों में कोई मतभेद नहीं था। अंकों के बारे में भी यह स्पष्ट था कि अंतर्राष्ट्रीय अंक भारतीय अंकों का ही एक नया संस्करण है। अंत में अंको के स्वरूप पर 2 सितम्बर, 1949 ईस्वी की बैठक में मतदान कराया गया। मतदान में दोनों पक्षो को बराबर अर्थात् 77- 77 मत प्राप्त हुए। अंत में संविधान सभा के सभापति श्री राजेन्द्र प्रसाद ने दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमी सदस्यों की भावना तथा डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी एवं श्री गोपाल स्वामी आयंगार की इस भावना को ध्यान में रखकर कि राजभाषा सम्बंधी विधेयक का प्रारूप ऐसा हो जिस पर सभा के सदस्यों की आम सहमति हो तथा जब दक्षिण भारत के अधिकांश सदस्यों ने देश के हित को ध्यान में रखकर देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को संघ की राजभाषा बनाना स्वीकार कर लिया है तो अंकों के मुद्दे पर लचीला रुख अपनाया जा सकता है, अपना निर्णायक मत (कास्टिंग वोट) अन्तरराष्ट्रीय अंकों के प्रयोग के पक्ष में दिया तथा एक मत के अधिक होने को कारण (एक मत से) अन्तरराष्ट्रीय अंको के प्रयोग

का प्रस्ताव पास हो गया। देवनागरी के अंक बनाम अन्तरराष्ट्रीय अंक के प्रयोग के मुद्दे को अंग्रेजी के विद्वानों ने हिन्दी बनाम अंग्रेजी नाम दे दिया। उनके वक्तव्य को प्रमाण मानकर तथा उसका संदर्भ देकर अंग्रेजी में लिखे हुए भारत विषयक संदर्भ ग्रंथों में यह प्रतिपादित किया गया है कि एक मत अधिक होने के कारण अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राजभाषा बना दिया गया। यह भ्रांति उन सभी लोगों को है जिनका ज्ञान अंग्रेजी के भारत विषयक संदर्भ ग्रंथों पर आधारित है।

गुलामी की भाषा प्रेमियों को इस संदर्भ में यूनेस्को की 2008 में प्रकाशित पुस्तक (इम्प्रूवमेंट इन द कुआलटी आफ़ मदर टंग- बेस्ड लिटरेसी एण्ड लर्निंग, पृष्ठ 12) पढ़ना चाहिए जिसके अनुसार, 'हमारे रास्ते में बड़ी रुकावट भाषा एवं शिक्षा के बारे में कुछ अंधविश्वास हैं और लोगों की आँखें खोलने के लिए इन अंधविश्वासों का भंडा फोड़ना चाहिए। ऐसा ही एक अन्धविश्वास यह है कि विदेशी भाषा सीखने का अच्छा तरीका इसका शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग है। दूसरा अंधविश्वास यह है कि विदेशी भाषा सीखना जितनी जल्दी शुरू किया जाए उतना बेहतर है। तीसरा अंधविश्वास यह है कि मातृ-भाषा विदेशी भाषा सीखने के राह में रुकावट है।' यह कौन नहीं जानता कि भारत में महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन से मिसाइल मैन एपीजे अब्दुल कलाम सहित अनेक वैज्ञानिक मातृभाषा में प्रारंभिक अध्ययन की देन हैं। स्पष्ट है कि ये असत्य, अंधविश्वास और पाखंड हैं जबकि वास्तविकता यह है कि सीखने के लिए अपने परिवेश की भाषा ही सबसे सहज, सरल, ग्राह्य होती है। आवश्यक होने पर अंग्रेजी, जर्मन, फ्रैंच, स्पैनिस सहित कोई भी भाषा सीखी जा सकती है। अपनी भाषा से कटने का अर्थ है, जड़ विहीन पौधे की तरह जीवन भर संघर्ष करते रहना। हमें अपने आपसे पूछना चाहिए कि क्या हम अपने बच्चों को जड़विहीन, संस्कृति विहीन, संस्कार विहीन, मानसिक गुलाम बनाना चाहते है? हम यह क्यों भूलते हैं कि दूसरों की बोली-भाषा बोलने वाला तोता पिंजरे में रहता है तो अपनी बोली बोलने वाली मैना आजाद रहती है?

आश्चर्य है कि कुछ अज्ञानी लोग हिंदी के शब्दों का अर्थ स्पष्ट न होने की बात कहकर अंग्रेजी का उपयोग करते हैं। जब एक संगोष्ठी में यह कहा गया तो तो मैंने इसका खंडन करते हुए ऐसे शब्द बताने की चुनौती प्रस्तुत की। बहुत प्रयास के बाद भी जब वे कुछ तथ्य प्रस्तुत करने में असफल रहे तो मैंने उनसे अर्थ को बहुत स्पष्ट करने वाली तथाकथित अंतर्राष्ट्रीय भाषा के कुछ शब्द प्रस्तुत किए तो उन्हें सांप सूंघ गया। वे Post शब्द का एक निश्चित अर्थ नहीं बता सके क्योंकि पुलिस पोस्ट, आर्मी पोस्ट, डाक, पद सहित अनेक जगह प्रचलित है। sleeper शब्द पर भी उनसे उत्तर देते न बना क्योंकि रेल की पटरियों को आपस में जोड़ने वाली लकड़ी स्लीपर है तो रेल के डिब्बे में शयन के लिए सीट स्लीपर है और उस पर सोने वाला भी स्लीपर। उसकी चप्पल भी स्लीपर हो सकती है। हिंदी में अनेकों पर्यायवाची मिलते हैं। यथा सूर्य के अनेक पर्यायवाची हैं लेकिन अंग्रेजी में Sun का कोई दूसरा शब्द नहीं मिलता। विशेष यह है कि हिंदी की देवनागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है जबकि अंग्रेजी की रोमन लिपि बहुत अस्पष्ट है। स्वयं अंग्रेजी के प्रख्यात विद्वान बर्नार्ड शाह ने इसे सुधारने की बात कही थी।

अंग्रेजी के पक्षधर नहीं जानते या नहीं जानना चाहते कि पिछली जनगणना के अनुसार मात्र 4 प्रतिशत लोग ही भारत में धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलते हैं। यदि वे कहते हैं कि अंग्रेजी के बिना विकास पथ पर आगे बढ़ना असंभव है तो उन्हें विश्व 20 उन्नत देशों की सूची को देखने चाहिए जिसमें मात्र 3 देश (अमेरिका, इंग्लैंड तथा आस्ट्रेलिया) ही अंग्रेजी वाले हैं (विशेष यह है कि तीनों की अंग्रेजी का उच्चारण भी भिन्न है) जबकि शेष 17 देश गैर अंग्रेजी लेकिन अपनी-अपनी मातृभाषाओं का उपयोग करते हैं। इसलिए बिना किसी हीन भावना के गर्व से सिर उठाकर अपनी भाषा को अंगीकार करे। हर भारतीय को अपनी पहचान मातृभाषा के साथ-साथ अपनी मातृभूमि की भाषा के रूप में हिंदी से जुड़कर समाज और देश के कामकाज में हिंदी के प्रयोग को प्राथमिकता देनी चाहिए। हमें अपने प्रतिनिधियों पर प्रशासन और न्यायालयों का कामकाज लोक की भाषा में करने का दबाव बनाना चाहिए। तभी महामना मदन मोहन मालवीय का स्वप्न साकार होगा जिसकी चर्चा अपने महत्वपूर्ण लेख में ''कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर'' के 30 सितंबर 1830 ई. के आज्ञापत्र का उल्लेख करते हुए बताया गया था, 'यहाँ के निवासियों को जज की भाषा सीखने के बदले जज को भारतवासियों की भाषा सीखना बहुत सुगम होगा, अतएव हम लोगों की सम्मति है कि न्यायालयों की समस्त कार्यवाई उस स्थान की भाषा में हो।'

अनंत बोलियों के होते हुए भी हिंदी हिंद की आत्मा है। यदि मातृभाषा को मां का आंचल कहे तो हिंदी मातृभूमि का विस्तृत आंचल है जो मेरा ज्ञान और प्रभाव बढ़ाता है। इस बात से भी किसे असहमति होगी कि अधिक से अधिक भाषाएं सीख अधिकतम ज्ञान अर्जित करना चाहिए लेकिन मातृभाषा की कीमत पर ऐसा करना आत्मघाती है। और अंत में वैलिंग्टन, न्यूजीलैंड के संग्रहालय में प्रदर्शित की जाने वाली उस फिल्म की चर्चा प्रासंगिक होगी जिसमें एक माओरी आदिवासी कहता है -- As long as we have the language, we have the culture As long as we have the culture, we can hold on to the land. (जब तक हमारे पास भाषा है, तब तक हमारे पास संस्कृति है, जब तक हमारे पास संस्कृति है, तब तक हम अपनी भूमि पर बचे रहेगें)। स्पष्ट है कि यह वैश्विक सत्य हमारे लिए भी महत्वपूर्ण है। भाषा और संस्कृति का संबंध गर्भनाल का होता है। हिंदी और भारतीय भाषाओं को बचाकर हम अपनी श्रेष्ठ संस्कृति को तो संरक्षित कर ही सकते हैं, साथ ही साथ संविधान में निहित राजभाषा का अधिक अधिक प्रयोग कर देश की एकता को मजबूत बना सकते हैं।

लेखक डॉ विनोद बब्बर वरिष्ठ साहित्यकार हैं एवं प्रतिष्ठित पत्रिका राष्ट्र किंकर के संपादक हैं।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

भारत में टीकाकरण संबंधित संदेह दूर करने के लिए स्वास्थ्य संचार: हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं की भूमिका

भाषा एक बुनियादी माध्यम है जिसके ज़रिए स्वास्थ्य से जुड़ी जानकारी को समझा जाता है और उस पर भरोसा किया जाता है। वैक्सीन को लेकर हिचकिचाहट कुछ हद तक गलत जानकारी, सुरक्षा को लेकर चिंता और भरोसे की कमी के कारण पैदा होती है।बातचीत में मातृभाषा या स्थानीय भाषा का इस्तेमाल करने से वैक्सीन से जुड़े संदेशों को समझना आसान हो जाता है, वे सांस्कृतिक रूप से ज़्यादा जुड़ते हैं और उन्हें आसानी से अपनाया जाता है।



डॉ. अदिति जोशी

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 क्षेत्रीय भाषाएँ शामिल हैं; जबकि सरकारी कामकाज के लिए, खासकर केंद्र सरकार द्वारा, हिंदी और अंग्रेज़ी का इस्तेमाल किया जाता है। हमारी रोज़मर्रा की बातचीत में हिंदी और अन्य स्थानीय भाषाओं का इस्तेमाल ज़्यादा होता है। इसलिए, भारत जैसे अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले देशों में टीकाकरण को लेकर हिचकिचाहट को दूर करने के लिए असरदार स्वास्थ्य संचार (हेल्थ कम्युनिकेशन)में हिंदी और अन्य स्थानीय भाषाओं की भूमिका बहुत अहम है। भाषाई और सांस्कृतिक संदर्भों के हिसाब से तैयार किया गया असरदार स्वास्थ्य संचार टीकाकरण को अपनाने और लोगों का भरोसा बढ़ाने में काफ़ी असर डाल सकता है, जिससे टीकाकरण कार्यक्रमों का सफल कार्यान्वयन होता है।

टीकाकरणके अवशोषण में भाषा का महत्व

भाषा एक बुनियादी माध्यम है जिसके ज़रिए स्वास्थ्य से जुड़ी जानकारी को समझा जाता है और उस पर भरोसा किया जाता है। वैक्सीन को लेकर हिचकिचाहट कुछ हद तक गलत जानकारी, सुरक्षा को लेकर चिंता और भरोसे की कमी के कारण पैदा होती है।बातचीत में मातृभाषा या स्थानीय भाषा का इस्तेमाल करने से वैक्सीन से जुड़े संदेशों को समझना आसान हो जाता है, वे सांस्कृतिक रूप से ज़्यादा जुड़ते हैं और उन्हें आसानी से अपनाया जाता है। अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले लोगों के लिए, स्थानीय भाषा में संदेश देने से साक्षरता की बाधाओं और भाषा व सांस्कृतिक रीति-रिवाजों में अंतर के कारण पैदा होने वाले अविश्वास को दूर करने में मदद मिलती है।

नई वैक्सीन, जैसे कि किशोर लड़कियों के लिए हाल ही में शुरू की गई HPV वैक्सीन, को लगवाने के लिए वैक्सीन के बारे में जागरूकता बहुत ज़रूरी है; और स्थानीय भाषाओं के ज़्यादा इस्तेमाल से इसे फैलाया जा सकता है। भारत में अलग-अलग साक्षरता स्तर वाले बहुभाषी समाज में, किसी एक भाषा में तैयार किए गए डिजिटल संदेशों को बड़े पैमाने पर फैलाने में मुश्किल आ सकती है। इससे पता चलता है कि क्षेत्र के हिसाब से सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त संदेश बनाने की ज़रूरत है, जिन्हें बड़े पैमाने पर फैलाने से पहले अलग-अलग आबादी वाले समूहों पर आज़माया जाना चाहिए।

टीकाकरण को लेकर हिचकिचाहट दूर करने में हिंदी और अन्य स्थानीय भाषाओं की भूमिका

- भरोसा और समझ बनाना: हिंदी और अन्य स्थानीय भाषाओं में वैक्सीन से जुड़ी जानकारी देने से स्वास्थ्य साक्षरता बढ़ती है और गलत जानकारी कम होती है, क्योंकि इससे जानकारी आसानी से समझ में आने वाली और लोगों से जुड़ी हुई लगती है। जब लोगों को अपनी पहली भाषा में संदेश मिलते हैं, तो तथ्यों को समझने, फ़ायदों को पहचानने और जानकारी के आधार पर सवाल पूछने की उनकी क्षमता बढ़ती है। यह बहुत ज़रूरी है क्योंकि हिचकिचाहट अक्सर साफ़ जानकारी न होने और सुरक्षा को लेकर चिंताओं के कारण होती है।

- सांस्कृतिक महत्व और संवेदनशीलता: भाषा संस्कृति से अलग नहीं हो सकती। स्थानीय भाषाओं में तैयार किए गए संदेशों में सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक आख्यान और तुलनाएँ शामिल की जा सकती हैं, जो वैक्सीन को अपनाने में मदद करती है।4 यहआख्यान समुदायों और देखभाल करने वालों को वैक्सीन से जुड़ी जानकारी को उनके सामाजिक मूल्यों और अनुभवों के अनुसार समझने में मदद करती हैं, और वैक्सीन को लेकर हिचकिचाहट के पीछे के जानकारी और भावनाओं से जुड़े पहलुओं को संबोधित करती हैं।

- ग्रामीण और कम सुविधा वाले इलाकों में बाधाओं को कम करना: ग्रामीण लोगों के बीच हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं का इस्तेमालज़्यादाहै, जहाँ स्वास्थ्य संबंधी जानकारी (हेल्थ लिटरेसी)

अक्सर कम होती है। स्थानीयभाषा के अनुकूल उपयोग से पहुँच में आने वाली बाधाएँ कम होती हैं, क्योंकि इन इलाकों के लोगों को अंग्रेज़ी की कम जानकारी हो सकती है। अभियानों और परामर्श सेवाओंमें स्थानीय भाषाओं का इस्तेमाल वैक्सीन की पहुँच को समान बनाता है।

❖ व्यक्तिगत संचार को बढ़ावा देना: वैक्सीन संबंधित हिचकिचाहट को दूर करने के लिए परामर्श सेवा और प्रेरक साक्षात्कार जैसी रणनीतियाँ असरदार होती हैं। इनके लिए व्यक्ति की भाषा और सांस्कृतिक संदर्भ के अनुसार स्पष्ट और सहानुभूतिपूर्ण बातचीत की ज़रूरत होती है।

❖ जन-स्वास्थ्य संदेशों की पहुँच और असर को बढ़ाना: भारत में भाषाई विविधता को देखते हुए, हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं वाले अभियानों से रेडियो, टेलीविज़न, प्रिंट और सोशल मीडिया जैसे मंच पर संदेशों का ज़्यादा प्रसार होता है। इससे यह पक्का होता है कि संदेश अलग-अलग भाषा बोलने वाले समुदायों तक असरदार ढंग से पहुँचें।6 स्थानीय भाषाओं में खास तौर पर तैयार किए गए संदेश डिजिटल जुड़ाव को भी आसान बनाते हैं, जहाँ भाषा-केंद्रित सामग्री गलत जानकारी के प्रसार को रोकने में मदद कर सकती है।

❖ अन्य संचार रणनीतियों के साथ तालमेल: स्वास्थ्य संदेशों को सकारात्मक रूप से बढ़ावा देने में सहभागीदृष्टिकोण की भूमिका पर अक्सर ज़ोर दिया गया है। गलत जानकारी कासामना करने और वैक्सीन के प्रति सकारात्मक सोच को मज़बूत करने के लिए भाषा को व्यापक रणनीतियों के साथ जोड़ना ज़रूरी है। इन रणनीतियों में समुदाय के भरोसेमंद लोग, स्थानीय नेता, स्वास्थ्यकर्मी आदि शामिल हैं, साथ ही नीतिगत पक्षपोषण भी ज़रूरी है।

चुनौतियाँ

हालांकि हिंदी और स्थानीय भाषाओं की सकारात्मक भूमिका स्पष्ट है, फिर भी कई जटिलताओं पर विचार करना ज़रूरी है:

❖ भाषा का चुनाव और क्षेत्रीय विविधता: भारत में भाषाओं की विविधता के कारण स्वास्थ्य अधिकारियों को सिर्फ़ हिंदी और अंग्रेज़ी के अलावा कई भाषाओं में स्थानीय स्तर पर उपाय करने की ज़रूरत है, ताकि अल्पसंख्यक भाषा बोलने वालों और क्षेत्रीय आबादी को भी शामिल किया जा सके। अगर सिर्फ़ अंग्रेज़ी या हिंदी का इस्तेमाल किया जाता है, तो गैर-हिंदी या स्थानीय भाषा बोलने वाले लोग अलग-थलग महसूस कर सकते हैं; इसलिए स्थानीय आबादी के हिसाब से बहुभाषी रणनीतियां अपनाना ज़रूरी है। हालाँकि, यह एक मुश्किल काम है ।

❖ अनुवाद की गुणवत्ता और एकरूपता: खराब अनुवाद या सांस्कृतिक रूप से असंवेदनशील सामग्री से गलतफहमी या अविश्वास बढ़ सकता है। संदेश की स्पष्टता और विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए उच्च-गुणवत्ता और सांस्कृतिक रूप से सही अनुवाद बहुत ज़रूरी हैं।

(लेखिका डॉ. अदिति जोशी राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान के राष्ट्रीय शीत श्रृंखला एवं टीका प्रबंधन संसाधन केंद्र में तकनीकी अधिकारी (अनुसंधान एवं निगरानी) के रूप में कार्य कर रहीं हैं)

संदर्भ

1. जिंदल, आर., और अन्य (2026)। पब्लिक हेल्थ कम्युनिकेशन रणनीतियों के ज़रिए भारत में HPV वैक्सीन को लेकर हिचकिचाहट और गलत जानकारी का समाधान। ह्यूमन वैक्सीन्स एंड इम्यूनोथेराप्यूटिक्स, वॉल्यूम 22, नंबर 1, 2711551। https://doi.org/10.1080/21645515.2026.2711551
2. ब्रंबॉघ, के. (क्विर्क), गेलर्ट, एफ., और मोकदाद, ए. एच. (2025)। वैक्सीन के प्रति हिचकिचाहट को समझना: कई अध्ययनों की समीक्षा से मिली जानकारी और सुधार की रणनीतियाँ। Vaccines, 13(10), 1003। https://doi.org/10.3390/vaccines13101003
3. हडसन, ए., और मोंटेलपारे, डब्ल्यू. जे. (2021)। वैक्सीन को लेकर हिचकिचाहट के कारण: COVID-19 से जुड़े पब्लिक हेल्थ मैसेजिंग के लिए इसके मायने। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एनवायरनमेंटल रिसर्च एंड पब्लिक हेल्थ, 18(15), 8054। https://doi.org/10.3390/ijerph18158054
4. एविला-अगुएरो, एम. एल., ब्रेनस-चाकोन, एच., फालेइरोस-अर्लांट, एल. एच., ब्री-डेल कैस्टिलो, जे., अल्फारो-मुरीलो, जे., डेबबैग, आर., और बर्गोस, एफ. (2026)। नैरेटिव शील्डिंग और प्रीबंकिंग: बाल चिकित्सा में टीके की झिझक के खिलाफ एक सहक्रियात्मक रणनीति। टीकों की विशेषज्ञ समीक्षा, 25(1)। https://doi.org/10.1080/14760584.2026.2694390
5. कौशिक, ए., फोमिचेवा, जे., बूनस्ट्रा, एन., फैबर, ई., गुप्ता, एस., और केस्ट, एच. (2025)। संयुक्त राज्य अमेरिका में बच्चों के टीकाकरण को लेकर हिचकिचाहट—बढ़ती समस्या और इसके प्रबंधन के लिए रणनीतियाँ, जिनमें मोटिवेशनल इंटरव्यूइंग भी शामिल है। Vaccines, 13(2), 115। https://doi.org/10.3390/vaccines13020115
6. एमरी, के., धालीवाल, जे., लाइट, आर., एबरल, एम., और क्रुकशैंक, एस. एम. (2025)। वैक्सीन लगवाने को बढ़ावा देना: पब्लिक हेल्थ सेक्टर के लिए रणनीतियाँ। ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ हॉस्पिटल मेडिसिन (लंदन, इंग्लैंड : 2005), 86(6), 1–14। https://doi.org/10.12968/hmed.2024.0669

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

शासकीय कार्यों में राजभाषा हिंदी का महत्व एवं कार्यालयीन प्रयोग

वर्तमान डिजिटल युग में हिंदी कार्यशालाओं का स्वरूप भी अधिक व्यावहारिक और तकनीक-केंद्रित हो गया है। अब इनमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन अनुवाद, यूनिकोड, वॉइस टाइपिंग, डिजिटल शब्दकोश, ई-ऑफिस, ई-मेल एवं ऑनलाइन राजभाषा उपकरणों के उपयोग का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इससे कर्मचारी आधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हुए अधिक दक्षता और गति के साथ हिंदी में कार्य करने में सक्षम होते हैं। यह पहल 'डिजिटल इंडिया' तथा 'ई-गवर्नेंस' की अवधारणा को भी सशक्त बनाती है।



निशा

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है, जहाँ भाषायी एवं सांस्कृतिक विविधता इसकी प्रमुख विशेषता है। देश में सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं, जिनके माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों के लोग अपनी अभिव्यक्ति करते हैं। ऐसी स्थिति में प्रशासनिक कार्यों के सुचारु संचालन, राष्ट्रीय एकता तथा जनसामान्य के साथ प्रभावी संवाद के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता अनुभव की गई, जो व्यापक रूप से समझी और स्वीकार की जाती हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए संविधान निर्माताओं ने देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी को संघ की राजभाषा का दर्जा प्रदान किया। राजभाषा हिंदी का उद्देश्य किसी अन्य भाषा का स्थान लेना नहीं, बल्कि शासन और जनता के बीच संवाद को सरल, सहज एवं प्रभावी बनाना है। वर्तमान समय में डिजिटल प्रशासन, ई-गवर्नेंस तथा नागरिक-केंद्रित सेवाओं के विस्तार के साथ राजभाषा हिंदी का महत्व और भी बढ़ गया है।

राजभाषा हिंदी की संवैधानिक एवं विधिक स्थिति

भारतीय संविधान के भाग XVII में अनुच्छेद 343 से 351 तक संघ की राजभाषा, राज्यों की भाषाओं तथा भाषा संबंधी नीतियों का विस्तृत प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी तथा उसकी लिपि देवनागरी निर्धारित की गई है। प्रशासनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए राजभाषा अधिनियम, 1963 तथा राजभाषा नियम, 1976 लागू किए गए, जिनमें केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी एवं अंग्रेज़ी के प्रयोग की व्यवस्था निर्धारित की गई है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर राष्ट्रपति के आदेश, गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम तथा विभिन्न निर्देशों के माध्यम से राजभाषा नीति के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित किया जाता है। इन प्रावधानों का उद्देश्य हिंदी के प्रयोग को क्रमिक, व्यावहारिक तथा प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुरूप बढ़ावा देना है।

शासकीय कार्यों में राजभाषा हिंदी का महत्व

राजभाषा हिंदी शासन और नागरिकों के बीच संचार का एक प्रभावी माध्यम है। प्रशासन तभी अधिक सफल माना जाता है जब उसकी योजनाएँ, नीतियाँ एवं निर्णय आम जनता तक उनकी समझ की भाषा में पहुँचें। हिंदी के माध्यम से सरकारी योजनाओं, अधिकारों, अधिसूचनाओं एवं सेवाओं की जानकारी देश के बड़े वर्ग तक सरलता से पहुँचती है, जिससे प्रशासन में पारदर्शिता, जवाबदेही तथा जनभागीदारी को प्रोत्साहन मिलता है। राजभाषा हिंदी राष्ट्रीय एकता, भावनात्मक समरसता तथा प्रशासनिक दक्षता को भी सुदृढ़ करती है। इसके माध्यम से सरकारी कार्यों में भाषा संबंधी जटिलताएँ कम होती हैं तथा निर्णयों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित होता है। इसलिए राजभाषा हिंदी केवल संवैधानिक व्यवस्था ही नहीं, बल्कि सुशासन का एक महत्वपूर्ण आधार भी है।

कार्यालयीन कार्यों में हिंदी का प्रयोग

केंद्र सरकार के कार्यालयों में पत्राचार, टिप्पण, प्रारूपण, कार्यालय आदेश, अधिसूचनाएँ, परिपत्र, प्रतिवेदन, कार्यवृत्त, वार्षिक प्रतिवेदन, निविदा दस्तावेज, प्रपत्र तथा विभिन्न प्रशासनिक अभिलेखों में हिंदी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। वर्तमान में ई-ऑफिस, ई-फाइल, ई-मेल, डिजिटल नोटशीट तथा विभिन्न ऑनलाइन पोर्टलों पर भी हिंदी में कार्य करना संभव हो गया है। यूनिकोड आधारित हिंदी टंकण तथा आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने कार्यालयीन कार्यों में हिंदी के प्रयोग को सरल और सुविधाजनक बनाया है। यदि अधिकारी एवं कर्मचारी मूल रूप से हिंदी में कार्य करना प्रारंभ करें तो अनुवाद की आवश्यकता स्वतः कम होगी तथा कार्य की गुणवत्ता एवं गति दोनों में सुधार होगा।

राजभाषा हिंदी हेतु कार्यशालाओं एवं हिंदी पखवाड़ा गतिविधियों का महत्व

राजभाषा नीति के प्रभावी क्रियान्वयन में हिंदी कार्यशालाओं एवं हिंदी पखवाड़ा गतिविधियों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। केंद्र सरकार के

कार्यालयों, सार्वजनिक उपक्रमों तथा स्वायत्त संस्थाओं में समय-समय पर आयोजित की जाने वाली हिंदी कार्यशालाएँ अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कार्यालयीन हिंदी के व्यावहारिक प्रयोग के लिए प्रशिक्षित करती हैं। इन कार्यशालाओं में राजभाषा संबंधी संवैधानिक प्रावधानों, राजभाषा अधिनियम, 1963, राजभाषा नियम, 1976, वार्षिक राजभाषा कार्यक्रम, पत्राचार, टिप्पण एवं प्रारूपण, ई-ऑफिस में हिंदी का प्रयोग, यूनिकोड आधारित हिंदी टंकण तथा प्रशासनिक शब्दावली के व्यावहारिक उपयोग की जानकारी दी जाती है। इससे कर्मचारियों का आत्मविश्वास बढ़ता है और वे हिंदी में मूल रूप से कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैं।

प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर से आयोजित होने वाला हिंदी पखवाड़ा केवल औपचारिक आयोजन नहीं, बल्कि राजभाषा के प्रति जागरूकता, प्रेरणा और सहभागिता का एक प्रभावी अभियान है। इस अवधि में हिंदी निबंध, टिप्पण एवं प्रारूपण, हिंदी टंकण, आशुभाषण, वाद-विवाद, काव्य-पाठ, प्रश्नोत्तरी, राजभाषा ज्ञान प्रतियोगिता तथा हिंदी में ई-ऑफिस कार्य जैसी विभिन्न प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से अधिकारियों एवं कर्मचारियों में हिंदी के प्रयोग के प्रति रुचि उत्पन्न होती है, भाषा-कौशल का विकास होता है तथा स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का वातावरण बनता है। उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले प्रतिभागियों को सम्मानित एवं पुरस्कृत किए जाने से राजभाषा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है।

वर्तमान डिजिटल युग में हिंदी कार्यशालाओं का स्वरूप भी अधिक व्यावहारिक और तकनीक-केंद्रित हो गया है। अब इनमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन अनुवाद, यूनिकोड, वॉइस टाइपिंग, डिजिटल शब्दकोश, ई-ऑफिस, ई-मेल एवं ऑनलाइन राजभाषा उपकरणों के उपयोग का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इससे कर्मचारी आधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हुए अधिक दक्षता और गति के साथ हिंदी में कार्य करने में सक्षम होते हैं। यह पहल 'डिजिटल इंडिया' तथा 'ई-गवर्नेंस' की अवधारणा को भी सशक्त बनाती है।

अतः हिंदी कार्यशालाएँ और हिंदी पखवाड़ा गतिविधियाँ केवल राजभाषा नीति के अनुपालन का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग की कार्य-संस्कृति विकसित करने, कर्मचारियों की भाषायी दक्षता बढ़ाने, प्रशासन को अधिक जनोन्मुख बनाने तथा संविधान की राजभाषा संबंधी भावना को व्यवहार में परिणत करने का प्रभावी साधन हैं। यदि इन कार्यक्रमों का नियमित, व्यावहारिक एवं परिणामोन्मुख आयोजन किया जाए, तो राजभाषा हिंदी का प्रयोग निश्चित रूप से अधिक व्यापक, प्रभावी एवं स्वाभाविक बन सकता है।

राजभाषा नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के उपाय

राजभाषा नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए केवल नियम बनाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि अधिकारियों एवं कर्मचारियों में हिंदी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण तथा कार्यकुशलता विकसित करना भी आवश्यक है। इसके लिए समय-समय पर हिंदी कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, हिंदी पखवाड़ा एवं हिंदी दिवस जैसे आयोजनों का विशेष महत्व है। हिंदी टंकण, यूनिकोड, राजभाषा सॉफ्टवेयर तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित अनुवाद उपकरणों का प्रशिक्षण भी कर्मचारियों को दिया जाना चाहिए। साथ ही उत्कृष्ट हिंदी कार्य करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पुरस्कार एवं प्रोत्साहन प्रदान करने से कार्य संस्कृति में सकारात्मक परिवर्तन आता है तथा राजभाषा नीति का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित होता है।

कार्यालयीन हिंदी के प्रयोग में आने वाली चुनौतियाँ

यद्यपि राजभाषा हिंदी के प्रयोग में निरंतर वृद्धि हुई है, फिर भी अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। कई अधिकारी एवं कर्मचारी अंग्रेज़ी में कार्य करने के अभ्यस्त होने के कारण हिंदी में मूल रूप से कार्य करने से संकोच करते हैं। तकनीकी एवं वैज्ञानिक विषयों की शब्दावली को कठिन मानने की प्रवृत्ति भी हिंदी के प्रयोग में बाधा उत्पन्न करती है। कुछ कार्यालयों में हिंदी टंकण दक्षता का अभाव, तकनीकी संसाधनों की कमी तथा अनुवाद पर अत्यधिक निर्भरता भी कार्य की गति को प्रभावित करती है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए सरल हिंदी, सतत प्रशिक्षण, आधुनिक तकनीक तथा प्रशासनिक नेतृत्व की सक्रिय भूमिका अत्यंत आवश्यक है।

समाधान एवं भविष्य की दिशा

भविष्य में राजभाषा हिंदी को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि कार्यालयों में मूल रूप से हिंदी में कार्य करने की संस्कृति विकसित की जाए। सरकारी दस्तावेजों की भाषा सरल, स्पष्ट एवं जनसुलभ हो, जिससे नागरिकों को जानकारी समझने में कठिनाई न हो। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन अनुवाद, वाक्-से-पाठ तकनीक तथा डिजिटल राजभाषा उपकरणों का व्यापक उपयोग कार्यालयीन हिंदी को और अधिक सक्षम बना सकता है। नई पीढ़ी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रशिक्षण, तकनीकी संसाधन तथा प्रेरक वातावरण उपलब्ध कराकर राजभाषा नीति को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। आने वाले समय में डिजिटल इंडिया एवं सुशासन की अवधारणा को सफल बनाने में राजभाषा हिंदी की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण होगी।

अत: हम कह सकते हैं कि राजभाषा हिंदी भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार है, जिसका उद्देश्य शासन को जनता के निकट लाना तथा प्रशासन को अधिक सरल, पारदर्शी एवं उत्तरदायी बनाना है। यह केवल संवैधानिक दायित्व नहीं, बल्कि नागरिकों को उनकी अपनी भाषा में शासन की सेवाएँ उपलब्ध कराने का प्रभावी माध्यम भी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी का प्रयोग केवल औपचारिकता तक सीमित न रहे, बल्कि प्रशासनिक कार्य संस्कृति का स्वाभाविक अंग बने। सरल, सहज एवं व्यवहारिक

हिंदी के माध्यम से ही सुशासन, जनसहभागिता तथा प्रशासनिक दक्षता के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। राजभाषा हिंदी का सशक्त एवं प्रभावी प्रयोग वास्तव में आत्मनिर्भर, समावेशी और नागरिक-केंद्रित प्रशासन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

लेखिका भारतीय प्रतिरक्षण संस्थान नई दिल्ली में कार्यरत हैं। आपकी रचनाएँ कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।



जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी की दशा और दिशा

वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी की दशा और दिशा और बेहतर हो इसके लिए हमें हिन्दी को आर्थिक, राजकीय, सामाजिक, वैचारिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सर्वसमावेशी भाषा बनाना होगा। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव का कहना है कि, "हिन्दी की यह त्रासदी है कि जो सरकारी कृत्रिम अनुवाद बोझिल संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बन रही है, जिसे मानक बनाकर सत्ता प्रतिष्ठानों द्वारा पेश किया जा रहा है, वह हिन्दी उस अर्थ में नहीं है जिसमें यह सहज वाणी पाती है।"



डॉ. राकेश शुक्ल

किसी भाषा की स्वीकार्यता के पीछे जो मुख्य कारक होते हैं, उनमें चार प्रमुख हैं—(1) उस भाषा को राजभाषा का पद मिला हो, अर्थात् राज्य या राष्ट्र द्वारा राजकाज की भाषा घोषित हो; (2) धार्मिक आधार, अर्थात् वह धर्म की भाषा हो; (3) अधिक संख्या में बोली जाने वाली भाषा हो; (4) आर्थिक आधार, अर्थात् जिस भाषा में हमारे आर्थिक हित अधिक संपन्न होते हैं। इन समस्त कारकों में आज आर्थिक आधार सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। राजनीतिक, धार्मिक और संख्या का आधार किसी भाषा के प्रचार-प्रसार में कभी महत्वपूर्ण हुआ करते थे, पर अब नहीं हैं।

हिन्दी को यह सौभाग्य अपने उद्भव काल से ही प्राप्त हुआ कि वह भारत की सर्वाधिक संख्या में बोली जाने वाली भाषा, अधिकांश भारतीयों की सम्पर्क भाषा, श्रेष्ठ साहित्य की भाषा तथा आर्थिक वर्चस्व की भाषा रही है। उन्नीसवीं शताब्दी में; विशेषकर भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के काल में; जब विश्रृंखलित भारत को एक सूत्र में बांधने की आवश्यकता पड़ी तब हिन्दी ने ही इस दायित्व को पूरा किया। अतः स्वाधीनता के बाद हिन्दी को राजभाषा का दायित्व मिलना स्वाभाविक ही था। एक छोटे से कालखण्ड में हिन्दी को अपने देश और वैश्विक धरातल पर जो प्रतिष्ठा और अर्हता प्राप्त हुई है वह कम महत्वपूर्ण नहीं है; लेकिन विश्व भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति अब तक क्यों नहीं हो पाई और संयुक्त राष्ट्र संघ में स्वीकृत अन्य भाषाओं के मुकाबले वह पीछे क्यों रह गइर्, इस पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाए तो कतिपय बिन्दु उभर कर आते हैं।

1. **यह सच है कि प्रत्येक भाषा का एक परिनिष्ठित या मानक रूप होता है, बावजूद इसके उसकी अनेक बोलियाँ उपभाषाएँ तथा बोलचाल के अनेक रूप उसके साहित्य को रचनात्मक ताजगी से भरते हैं, किन्तु किसी भी राष्ट्रभाषा का एक परिनिष्ठित रूप सम्पूर्ण राष्ट्र में एक जैसा व्यवहृत हो, यह** आवश्यक है। राष्ट्र भाषा के प्रति सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता में मोह और गर्व का भाव भी होना चाहिए। अपनी-अपनी मातृभाषाओं के प्रति अनुराग के साथ राष्ट्रभाषा सीखने की ललक भी हम सभी भारतीयों के मन में जाग्रत हो। हिन्दी के साथ अभी तक ऐसा नहीं हो सका है।

2. हिन्दी को लेकर आज-कल के जनसंचार माध्यम, फिल्म जगत, राजनीतिज्ञ, लेखक और पत्रकार जितने भी प्रयोग कर रहे हैं; उससे यदि एक ओर हिन्दी का किसी न किसी रूप में विकास हो रहा है तो कहीं न कहीं उसकी अति, भाषायी अराजकता को जन्म दे रही हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया ने हिन्दी को हिंगलिश बनाकर अथवा विज्ञापन की भाषा ने बाजारवाद के कारण जिस तरह की बाजारू भाषा को बढ़ावा दिया है, उससे नयी पीढ़ी किस तरह के भाषा-संस्कार ग्रहण करेगी, यह चिन्तनीय है। जनसंचार प्रौद्योगिकी ने केवल हमारे बाह्य जीवन को ही प्रभावित नहीं किया है बल्कि हमारे चिन्तन और विचारों को भी प्रभावित किया है। व्यावसायिकता के दबाव ने यह प्रभाव नकारात्मक अधिक बनाया है। हमारी भाषाएँ अपनी प्रौद्योगिकी के कारण एक ओर सूचनाओं, खबरों और विज्ञापन के लिए अत्यधिक उपयोगी होती जा रही है; किन्तु दूसरी ओर जिस भाषा के माध्यम से मनुष्य, मनुष्य के बीच संवाद स्थापित करता है, आत्माभिव्यक्ति करता है, उस भाषा पर प्रौद्योगिकी हमला कर रही है। मातृभाषा का तो और अहित हो रहा है, मातृभाषा, जिसके साथ हमारा माँ-जैसा लगाव होता है, प्रौद्योगिकी उस भाषा के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध खत्म कर उसे अभिव्यक्ति का उपकरण मात्र बना रही है। भारत में भाषाओं के साथ पाश्चात्य देशों वाला नजरिया लागू नहीं हो सकता। पाश्चात्य जगत में भाषाएँ वहाँ की जनता के राजनैतिक, आर्थिक या व्यावसायिक हित साधनों का उपकरण पहले हैं, उनकी अस्मिता या पहचान बाद में। भाषा के साथ हमारे यहाँ सांस्कृतिक या रागात्मक सम्बन्ध पहले हैं। हमारे देश में गाय दूध देने का

उपकरण मात्र न होकर माँ भी होती है, जबकि पाश्चात्य जगत में वह दूध देने वाली पशु मात्र है। इसीलिए भाषा के सम्बन्ध में वे प्रौद्योगिकी के चलते 'यूज एण्ड थ्रो' की संस्कृति भी अपना रहे हैं, जो हमारे यहाँ भी धीरे-धीरे आ रही है।

3. हम संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को मान्यता दिलाकर उसके विश्वभाषा होने का सपना पूरा करना चाहते हैं पर अभी तक यह अपने देश में ही सर्वस्वीकृत नहीं हो सकी है। 'ग' क्षेत्र के अन्तर्गत तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश तथा केरल में हिन्दी की दशा में अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकी है।

4. अहिन्दी भाषियों के मन से हिन्दी साम्राज्यवाद का भय (सरकारी नौकरियों में पिछड़ जाने का भय), अभी तक दूर नहीं किया जा सका है, जबकि आजीविका के लिए हिन्दी भाषी और गैर हिन्दी भाषी, दोनों ही अंग्रेजी की अनिवार्यता को वर्षों से महसूस कर रहे हैं। यह भय अंग्रेजी के प्रति होना चाहिए था, जो कि नहीं है।

5. अंग्रेजी शासन काल में देशी भाषाओं की घोर उपेक्षा (उन्हें वर्नाक्युलर कहे जाने) के बावजूद माध्यमिक स्तर की शिक्षा तक उन्हें माध्यम बनाया गया जबकि आज हम अंग्रेजों की उपनिवेशवादी व्यवस्था से मुक्त होने के बावजूद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की उपनिवेशवादी व्यवस्था से आतंकित हो, अपने बच्चों से उनकी मातृभाषा छीन रहे हैं; और प्रारम्भिक स्तर से ही उनकी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा के बजाय एक विदेशी भाषा को रखना चाहते हैं।

इन बिन्दुओं के आलोक में वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जब हम हिन्दी की दशा और दिशा पर विचार करते हैं तो अनेक भाषा चिन्तकों के विचारों को रेखांकित किया जा सकता है। वैश्विक परिदृश्य में किसी भाषा की लोकप्रियता और श्रेष्ठता के सम्बन्ध में प्रख्यात हिन्दी विमर्शकार डा॔0 वेद प्रताप 'वैदिक' के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वे लिखते हैं कि "जो भाषाएँ संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्य हुईं, क्या वे विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषाएँ थीं? नहीं। वस्तुतः ये द्वितीय विश्वयुद्ध में विजित देशों की भाषाएँ थीं। वहां तर्क भाषा की श्रेष्ठता का नहीं, अपितु भाषा-भाषी की श्रेष्ठता का था। तर्क श्रेष्ठता का भी नहीं अपितु विजय-पराजय का था। जिन राष्ट्रों के पास ताकत थी, पैसा था, उनकी भाषाएँ इस विश्व संस्था की भाषा बन गईं। सन् 1945 ई0 में जब संयुक्त राष्ट्रसंघ बना, भारत गुलाम था। हिन्दी पराजित से भी अधिक पराजित गुलाम राष्ट्र की भाषा थी।"1 विश्व भाषा के संदर्भ में निःसंदेह हिन्दी को यह सौभाग्य नहीं मिला पर स्वाधीनता के बाद हिन्दी को राष्ट्र भाषा का दायित्व आज तक न मिलना अधिक दुर्भाग्यपूर्ण है। इसके पीछे एक बहुत बड़ी साजिश है। जिसके तहत भारत को अंग्रेज भाषा-भाषी देश कहा जा रहा है। राजभाषा आयोग ने जिन कारणों से हिन्दी को राजभाषा के पद पर आसीन किया था, उसकी घोर उपेक्षा की गयी है। राजभाषा आयोग के प्रस्ताव की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है-" हम देश के सांस्कृतिक जीवन की अनन्यता को दृढ़ करने वाले तत्वों की खोज करते हैं। सदियों के बाद पुनः प्राप्त इस राजनीतिक एकता के साथ-साथ भाषायी एकता भी हम पाना चाहते हैं। इस एकता की प्राप्ति हम अंग्रेजी भाषा की स्थानापन्न किसी देशी भाषा को बनाना चाहते हैं।

सभी प्रादेशिक भाषाओं में हिन्दी को राष्ट्र भाषा इसलिए चुना गया कि इसके बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है।"2 पर राजभाषा आयोग के इस मंतव्य का क्या हुआ, इससे हम भली-भाँति परिचित हैं। बावजूद इसके हिन्दी की विश्व-यात्रा के पक्ष में बहुत सी महत्वपूर्ण बातें हैं। पहली यह कि हिन्दी बहुत तेजी के साथ आजीविका (रोजगार) से जुड़ रही है। सम्पूर्ण देश में यह सम्पर्क भाषा बन ही चुकी है। प्रवासी भारतीयों को भी यह आपस में एकता के सूत्र में बांधे हुए है। विश्व के अस्सी से अधिक देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। पचास से अधिक देशों में लगभग तीन करोड़ हिन्दी भाषी निवास करते हैं। इनमें से लगभग दो दर्जन देश ऐसे हैं, जिनमें हिन्दी भाषियों की संख्या पां॔च लाख से अधिक है। भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य देशों में लगभग बीस करोड़ लोग हिन्दी को बोल और समझ लेते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार विश्व के 80 करोड़ लोग हिन्दी बोल और समझ लेते थे। विगत 2015 में प्रो0 करुणाशंकर उपाध्याय के द्वारा कराये गये सर्वेक्षण में यह संख्या दुनिया के सभी 206 देशों में एक अरब तीस करोड़ हो गई है, जो पूर्व में सर्वाधिक बोले जानी भाषा मंदारिन से भी अधिक हो गई है। विश्व के एक सौ पचास देशों में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था है तथा इक्यानबे विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग हैं। 'यूनेस्को' की सात भाषाओं में हिन्दी पहले से ही शामिल है। साइबर स्पेस की भाषा के रूप में हिन्दी का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। भाषाशास्त्री अशोक केलकर का मानना है कि हिन्दी वैश्वीकरण की भाषा की दौड़ में सबसे आगे है। वे लिखते हैं, "यद्यपि वैश्वीकरण की शुरुआत उद्यम के क्षेत्र से हुई; फिर धीरे-धीरे यह क्रिया जीवन के अन्य क्षेत्रों को व्याप्त कर रही है। भाषा भी इसका अपवाद नहीं है जिस तरह शब्द वैश्विक बनते हैं उसी तरह भाषाएँ॔ भी बन सकती है। फ्रेन्च, स्पेनिश, अंग्रेजी- ये पहली वैश्विक भाषायें थीं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने बाद में इसमें रूसी और चीनी को भी सम्मिलित कर लिया। बाद में अरबी को भी, जबकि हिन्दी और जापानी इस दौड़ में शामिल है।" हिन्दी के प्रचार प्रसार में कतिपय अन्य कारक भी हैं यथा- दूरसंचार माध्यमों (दूरदर्शन आदि) में हिन्दी कार्यक्रमों/धारावाहिकों आदि की लोकप्रियता, हिन्दी फिल्मों का वैश्विक प्रसार, देश और विश्व की लगभग समस्त महत्वपूर्ण भाषाओं में हिन्दी की महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद तथा उन भाषाओं की महत्वपूर्ण कृतियों का हिन्दी में अनुवाद आदि। हिन्दी की इन समस्त विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि हिन्दी की विश्व-यात्रा

निरन्तर जारी है। प्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्र राव के शब्दों में, "भाषा यात्रा नहीं करती, मनुष्य यात्रा करके भाषा को अपने साथ ले जाता है।"4 और हिन्दी भाषी यह कार्य कर रहे हैं।

सुप्रसिद्ध भाषा चिन्तक डॉ उदय नारायण सिंह ने अपने वृहद अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला है कि "आज संसार में कुल छह हजार भाषाएँ हैं-इनमें से मात्र एक सौ भाषाएँ हैं; जिन्हें पृथ्वी के 95 प्रतिशत लोग बोलते हैं; और उनमें से आधे लोग सिर्फ पाँच भाषायें ही बोलते हैं- चीनी, अंग्रेजी, स्पेशिन, रूसी और हिन्दी।"5 यह हिन्दी के लिए कम गर्व की बात नहीं है; जहाँ विश्व की अनेक छोटी भाषायें क्रमशः विलुप्ति के कगार पर हैं और हजारों भाषाएँ नष्ट हो चुकी हैं, हिन्दी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। पर इसके लिए सरकार की ओर से कोई कारगर प्रयत्न नहीं किए जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में प्रो0 ए0 अरविन्दाक्षन के विचार महत्वपूर्ण हैं, "हिन्दी को जो अर्हता प्राप्त हुई है, उसके भौगोलिक एवं ऐतिहासिक कारण हैं, जिनको नजरन्दाज नहीं किया जा सकता है, लेकिन यह भी सच है कि हिन्दी को विश्व-भाषा के रूप में परिकल्पित करने के स्वप्न में मगन होने से कोई फायदा नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ में यह देखना आवश्यक है कि अन्य भाषाएँ किस तरह से स्वीकृत हुई हैं, और अब तक हिन्दी स्वीकृत क्यों नहीं हुई है। स्वीकृति के मानक, प्रतिमान कौन-कौन से हैं? सरकार को इस दिशा में कौन-कौन सी कार्रवाइयाँ करनी हैं।"

वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी की दशा और दिशा और बेहतर हो इसके लिए हमें हिन्दी को आर्थिक, राजकीय, सामाजिक, वैचारिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सर्वसमावेशी भाषा बनाना होगा। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव का कहना है कि, "हिन्दी की यह त्रासदी है कि जो सरकारी कृत्रिम अनुवाद बोझिल संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बन रही है, जिसे मानक बनाकर सत्ता प्रतिष्ठानों द्वारा पेश किया जा रहा है, वह हिन्दी उस अर्थ में नहीं है जिसमें यह सहज वाणी पाती है।"

हिन्दी को आजीविका की भाषा कैसे बनाएँ? इस बात पर विचार करते हैं तो कह सकते हैं कि आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उन्हीं भाषाओं का वर्चस्व है जो व्यावसायिकता में सबसे आगे हैं। उनमें उस समाज की संवेदना, संस्कृति और सामाजिकता की अभिव्यक्ति कितनी सशक्त हुई है, ये बातें गौण हो गई हैं। संस्कृत और ग्रीक- जैसी भाषाएँ, जिनमें आज भी साहित्य और ज्ञान राशि का सबसे समृद्ध भण्डार है, व्यावसायिकता की दृष्टि से अप्रासंगिक होती जा रही हैं। कारण, आज के आम आदमी के सामने रोजी-रोटी का संकट इतना बड़ा है कि उसके पेट को जो भाषा रोटी दे सकेगी, वही भाषा उसके लिए महत्वपूर्ण होगी। इसी तरह पूँजीपतियों और व्यवसायियों के लिए व्यावसायिकता का दबाव इतना बड़ा है कि उसे जिस भाषा में अपने व्यावसायिक हित दिखाई देंगे, वह उन्हीं भाषाओं को बढ़ावा देगा।

आर्थिक क्षेत्र में वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण के कारण आज वैश्विक मुद्रा और वैश्विक भाषा की आवश्यकता महसूस होने लगी है; और अघोषित रूप से यह कार्य डॉलर और अंग्रेजी के माध्यम से सम्पन्न भी हो रहा है, बावजूद इसके रूसी, चीनी और जापानी ऐसी भाषाएँ हैं जो अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान, तकनीक और व्यावसायिकता के क्षेत्र में अंग्रेजी को टक्कर दे रही हैं। इन देशों में विकसित किसी भी तरह के तकनीकी ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हमें उनकी भाषा सीखनी पड़ती है, वह अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं होता जबकि हमारे देश में इस तरह का समस्त ज्ञान या शोध कार्य सिर्फ अंग्रेजी में उपलब्ध होता है, यहाँ तक कि विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, कानून, वाणिज्य, मानविकी और कृषि विज्ञान के विषयों में उच्च स्तर का पाठ्यक्रम सिर्फ अंग्रेजी में उपलब्ध है। हिन्दी का दुर्भाग्य यह है कि दीर्घावधि तक अंग्रेजों के उपनिवेश रहने के कारण हमारे देश में आज भी ज्ञान के समस्त अनुशासनों में अंग्रेजी का चर्चस्व या एकाधिकार व्याप्त है और जब तक ये रहेगा हिन्दी को रोजी-रोटी की भाषा बनाने में बाधाएँ आती रहेंगी। इधर जनसंचार प्रौद्योगिकी और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में हिन्दी के माध्यम से अभिव्यक्ति के अनेक खिड़की, दरवाजे खुल रहे हैं व्यावसायिकता की दृष्टि से हिन्दी के लिए यह शुभ लक्षण हैं।

लेखक डॉ राकेश शुक्ल वी0एस0एस0डी0 कॉलेज, कानपुर के हिन्दी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं।

संदर्भ-

1. हिन्दी कैसे बने विश्वभाषा (लेख)- वेद प्रताप वैदिक वाक्, अंक-02, वर्ष-2007 पृ0 94
2. भूमण्डलीकरण, भारत की भाषा समस्या और डॉ लोहिया (लेख)- डॉ ब्रज कुमार पाण्डेय, वाक्, अंक-03, वर्ष 2007, पृ9 194
3. भाषा का वैश्वीकरण और वैश्वीकरण की भाषा (लेख)- डॉ अशोक केलकर, आलोचना, अंक-09, वर्ष 2002, पृ0 87
4. वरिष्ठ साहित्यकार राजेन्द्र राव का कथन- एक साक्षात्कार
5. भाषा, भाषी, भाषिकी (लेख) डॉ उदय नारायण सिंह, बहुवचन, अंक-2, अप्रैल-जून, 2000 ई0, पृ0 305
6. केरल में हिन्दी की स्थिति (लेख) ए0 अरविन्दाक्षन, वाक्, अंक-02, वर्ष 2007, पृ0 122
7. हिन्दी का प्रश्न हम हार चुके हैं (लेख)- परमानन्द श्रीवास्तव, वागर्थ, अंक-86, पृ0 50

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

हिंदी भाषा की बोलियों में श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्द : एक भाषावैज्ञानिक अध्ययन

हिंदी की बोलियों के अध्ययन की परंपरा पुरानी है। जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी के विभिन्न भाषिक रूपों का विस्तृत दस्तावेजीकरण मिलता है। अवधी तथा पश्चिमी हिंदी से संबंधित सामग्री इसके विभिन्न खंडों में संकलित है। आधुनिक ध्वन्यात्मक अध्ययनों में भी अवधी, बघेली, भोजपुरी, बुंदेली, हरियाणवी, कन्नौजी और खड़ीबोली आदि भाषिक रूपों की तुलनात्मक चर्चा की गई है।



डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह

भाषा मानव की सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है। हिंदी भाषा-क्षेत्र में ब्रजभाषा, अवधी, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरियाणवी तथा छत्तीसगढ़ी आदि अनेक भाषिक रूप प्रचलित हैं। इनमें ध्वनि, रूप, शब्द और अर्थ के स्तर पर विविधता के साथ पारस्परिक साम्य भी विद्यमान है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हिंदी की प्रमुख बोलियों के संदर्भ में श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्दोंकी भाषावैज्ञानिक प्रकृति का अध्ययन किया गया है। अध्ययन में ध्वनिविज्ञान, स्वनिमविज्ञान, शब्दार्थविज्ञान, बोलीविज्ञान तथा समाजभाषाविज्ञान को आधार बनाया गया है। शोध का प्रमुख उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि श्रुतिसाम्य केवल ध्वनि-समानता की घटना नहीं, बल्कि ध्वनि-परिवर्तन, क्षेत्रीय उच्चारण, ध्वनि-लोप, अनुनासिकीकरण, ऐतिहासिक विकास, भाषिक संपर्क तथा मानकीकरण से प्रभावित होने वाली जटिल भाषिक प्रक्रिया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि किसी शब्द-युग्म को श्रुतिसम-भिन्नार्थक मानने के लिए केवल उसकी वर्तनी पर्याप्त नहीं है; वास्तविक उच्चारण, अर्थगत स्वतंत्रता, व्युत्पत्तिगत स्थिति, संदर्भगत प्रयोग और क्षेत्रीय प्रमाण को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। अतः हिंदी की बोलियों में श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्दों का क्षेत्रीय और तुलनात्मक अध्ययन हिंदी की ध्वन्यात्मक तथा अर्थवैज्ञानिक विविधता को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

भाषा मानव-समाज की सामूहिक चेतना का सजीव माध्यम है। यह केवल विचारों के आदान-प्रदान का साधन नहीं, बल्कि इतिहास, संस्कृति, परंपरा, लोक-स्मृति और सामुदायिक पहचान की संवाहिका भी है। भाषा का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील रहता है। भौगोलिक विस्तार, सामाजिक संपर्क, शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, व्यापार तथा अन्य भाषाओं के प्रभाव से भाषा में निरंतर परिवर्तन होते हैं।

इसी परिवर्तनशीलता के कारण किसी व्यापक भाषा-क्षेत्र में अनेक क्षेत्रीय भाषिक रूप विकसित होते हैं। हिंदी इसका प्रमुख उदाहरण है। हिंदी क्षेत्र में प्रयुक्त विभिन्न बोलियों में ध्वन्यात्मक, रूपात्मक और शब्दार्थगत विविधता के साथ पर्याप्त पारस्परिक साम्य भी दिखाई देता है।

हिंदी की बोलियों के अध्ययन की परंपरा पुरानी है। जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी के विभिन्न भाषिक रूपों का विस्तृत दस्तावेजीकरण मिलता है। अवधी तथा पश्चिमी हिंदी से संबंधित सामग्री इसके विभिन्न खंडों में संकलित है। आधुनिक ध्वन्यात्मक अध्ययनों में भी अवधी, बघेली, भोजपुरी, बुंदेली, हरियाणवी, कन्नौजी और खड़ीबोली आदि भाषिक रूपों की तुलनात्मक चर्चा की गई है।

इसी व्यापक भाषिक परिदृश्य मेंश्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्दविशेष अध्ययन-विषय बनते हैं, क्योंकि इनमें ध्वनि और अर्थ का संबंध अत्यंत स्पष्ट रूप से सामने आता है।

श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्द : संकल्पना

'श्रुतिसम' का सामान्य अर्थ है—सुनने में समान या समानप्राय। जब दो स्वतंत्र शब्दों के उच्चारण समान अथवा अत्यंत निकट हों, किंतु उनके अर्थ भिन्न हों, तब उन्हें श्रुतिसम-भिन्नार्थक कहा जा सकता है।परंपरागत उदाहरण—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अंस	कंधा	अंश	भाग
कुल	वंश	कूल	किनारा
शर	बाण	सर	तालाब
अवधि	सीमा/समय की सीमा	अवधी	अवध की भाषा
अनल	अग्नि	अनिल	वायु
अलि	भ्रमर	अली	सखी

किन्तु भाषावैज्ञानिक दृष्टि से **"समान उच्चारण"** कहना पर्याप्त नहीं है। यह देखना आवश्यक है कि समानता किस स्तर पर है, किस भाषिक समुदाय में है और कितनी मात्रा में है।

भाषावैज्ञानिक परिष्कृत परिभाषा

"ऐसे दो या दो से अधिक स्वतंत्र शब्द, जिनकी ध्वन्यात्मक संरचना किसी विशिष्ट भाषिक समुदाय, क्षेत्र अथवा भाषिक संदर्भ में पूर्णतः अथवा पर्याप्त रूप से समान या निकट हो, किंतु जिनके अर्थ और प्रयोगगत संदर्भ पृथक हों, उन्हें श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्द कहा जा सकता है। इनकी श्रुतिसाम्यता का निर्धारण केवल वर्तनी के आधार पर नहीं, बल्कि वास्तविक उच्चारण, ध्वन्यात्मक संरचना, क्षेत्रीय ध्वनि-प्रवृत्तियों तथा अर्थगत स्वतंत्रता के आधार पर किया जाना चाहिए।"

इस परिभाषा की विशेषता यह है कि इसमें पाँच बातें प्रमुख हैं— ध्वन्यात्मक समानता + क्षेत्रीयता + अर्थगत स्वतंत्रता + संदर्भ + वास्तविक उच्चारण।

श्रुतिसाम्य और समध्वनिता

श्रुतिसाम्य को आधुनिक भाषावैज्ञानिक समध्वनिता की संकल्पना से जोड़कर देखा जा सकता है। दो शब्दों की ध्वनि समान हो सकती है, जबकि उनके—लिखित रूप अलग हों;अर्थ अलग हों;व्युत्पत्तिगत स्रोत अलग हों;व्याकरणिक प्रयोग अलग हों।उदाहरणतः—कर-हाथ, कर-राजस्व, हार-पराजय, हार-गले का आभूषण, पद-पैर/चरण, पद-पदवी/स्थान, पत्र-पत्ता, पत्र-लिखित संदेश, धारा-प्रवाह, धारा-विधि का उपबंध आदि । इन उदाहरणों में ध्वनि-समानता के साथ अर्थ-भिन्नता स्पष्ट है। परंतु बोलीगत अध्ययन में वास्तविक उच्चारण का परीक्षण आवश्यक होगा।

समनामता और बहुअर्थकता से अंतर

श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्दों का संबंध समनामता से है, किंतु दोनों को पूर्णतः समान नहीं माना जा सकता। समनामता में समान रूप या उच्चारण वाले शब्दों के अर्थ परस्पर असंबद्ध हो सकते हैं। यदि समान रूप के विभिन्न अर्थ एक ही शब्द के अर्थ-विस्तार से विकसित हुए हों, तो बहुअर्थकता अधिक उपयुक्त संकल्पना होगी।

समनामता

समनामता में समान अथवा समानप्राय रूप वाले शब्दों के अर्थ स्वतंत्र होते हैं। उदाहरणतःहारका 'पराजय' और 'गले का आभूषण' अर्थ यदि व्युत्पत्तिगत रूप से स्वतंत्र सिद्ध हों, तो यह समनामता की दिशा में जाएगा।

बहुअर्थकता

बहुअर्थकता में एक ही शब्द के अनेक अर्थों के बीच अर्थगत अथवा ऐतिहासिक संबंध बना रहता है।उदाहरणतःमुखका मूल अर्थ 'मुँह' है, किंतु इससे 'अग्रभाग', 'प्रवेश-द्वार' और 'मुख्य भाग' जैसे अर्थ विकसित हुए हैं। यहाँ अर्थ-विस्तार का संबंध दिखाई देता है।इसी प्रकारशीर्षका अर्थ शरीर का ऊपरी भाग तथा किसी व्यवस्था का सर्वोच्च स्थान दोनों हो सकता है। दोनों अर्थों में 'ऊपर' की मूल संकल्पना का संबंध बना रहता है।

तुलनात्मक अंतर

आधार	समनामता	बहुअर्थकता
रूप	समान/समानप्राय	एक ही शब्द-रूप
अर्थ	परस्पर असंबद्ध	परस्पर संबंधित
व्युत्पत्ति	स्वतंत्र स्रोत संभव	सामान्यतः एक स्रोत
अर्थ-विकास	आवश्यक नहीं	अर्थ-विस्तार/रूपक आदि
परीक्षण	व्युत्पत्ति और अर्थ-स्वतंत्रता	अर्थ-संबंध और अर्थ-विकास

अतः श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्दों के अध्ययन मेंध्वनि-साम्य के साथ शब्द-स्वतंत्रता और अर्थगत स्वतंत्रताकी जाँच आवश्यक है।

हिंदी की बोलियों का भाषावैज्ञानिक परिदृश्य

हिंदी भाषा-क्षेत्र में अनेक क्षेत्रीय भाषिक रूपों का प्रयोग होता है। पारंपरिक वर्गीकरण में पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी की संज्ञाएँ महत्त्वपूर्ण रही हैं। पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत खड़ीबोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली और हरियाणवी आदि का उल्लेख मिलता है, जबकि पूर्वी हिंदी के अंतर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी आदि भाषिक रूपों को रखा गया है।

भोजपुरी का संबंध व्यापक हिंदी क्षेत्र से रहा है, यद्यपि आधुनिक भाषाविज्ञान में इसे स्वतंत्र भाषा के रूप में भी वर्गीकृत किया जाता है।यह स्थिति स्पष्ट करती है कि 'भाषा' और 'बोली' की सीमाएँ केवल भाषिक संरचना से निर्धारित नहीं होतीं; सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक कारक भी इसमें महत्त्वपूर्ण हैं।

हिंदी की बोलियों में ध्वन्यात्मक विविधता

श्रुतिसाम्य के अध्ययन में ध्वन्यात्मक परिवर्तन सबसे महत्त्वपूर्ण आधार है। प्रमुख प्रक्रियाएँ हैं—

स्वर-परिवर्तन

बोलियों में स्वर-गुण, स्वर-मात्रा अथवा स्वर-संरचना में परिवर्तन हो सकता है। अवधी मेंभाई → भै, दो → दुइ, गाय → गऊजैसे रूप स्वर-संरचना की क्षेत्रीय विविधता को संकेतित करते हैं।

व्यंजन-परिवर्तन

कुछ बोलियों में व्यंजन-प्रतिस्थापन की प्रवृत्ति मिलती है। उदाहरणतःव → बअथवाश → सजैसी प्रक्रियाओं का उल्लेख क्षेत्रीय अध्ययन में किया जा सकता है। किंतु किसी विशेष शब्द-युग्म के संबंध में यह परिवर्तन स्थानीय वक्ताओं से प्रमाणित होना चाहिए।

व्यंजन-समूह का सरलीकरण

ऐतिहासिक अथवा बोलीगत विकास में संयुक्त व्यंजन सरल रूप ग्रहण कर सकते हैं। जैसे—हस्त → हाथ, अग्नि → आग आदि । ये स्वयं श्रुतिसम-भिन्नार्थक युग्म नहीं हैं, बल्कि ध्वनि-परिवर्तन के उदाहरण हैं।

- **ध्वनि-लोप**
  मध्य अथवा अंतिम ध्वनि के लोप से शब्द की संरचना छोटी हो सकती है। ऐसी प्रक्रिया दो स्वतंत्र शब्दों के उच्चारणों के बीच दूरी कम कर सकती है।
- **अनुनासिकीकरण**
  स्वर के नासिक्य उच्चारण से शब्द की ध्वनि-संरचना बदल सकती है। हिंदी की अनेक बोलियों में अनुनासिकता की मात्रा और वितरण मानक हिंदी से भिन्न हो सकता है।
- **शब्दांत परिवर्तन**
  कुछ बोलियों में शब्द के अंत में स्वर का आगम, लोप अथवा परिवर्तन दिखाई देता है। यह परिवर्तन भी दो शब्दों के उच्चारण को निकट ला सकता है।

इस प्रकार ध्वनि-परिवर्तन को श्रुतिसमत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण न मानकरश्रुतिसाम्य उत्पन्न करने वाली संभावित भाषिक प्रक्रियामानना अधिक वैज्ञानिक है।

प्रमुख बोलियों में ध्वनि-परिवर्तन

कन्नौजी

कन्नौजी का क्षेत्र ब्रज, बुंदेली और खड़ीबोली के संपर्क में आता है। इसलिए इसमें संक्रमणशील ध्वनि-प्रवृत्तियों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

मानक/ऐतिहासिक रूप	कन्नौजी रूप	तुलनात्मक आधार	परिवर्तन
सर्प	साँप	र्प → प	व्यंजन-समूह सरलीकरण
दन्त	दाँत	न् → अनुनासिकता	अनुनासिकीकरण/ध्वनि-परिवर्तन
हस्त	हाथ	स्त → त	व्यंजन-समूह सरलीकरण
अग्नि	आग	ग्न → ग	समूह-सरलीकरण
मुख	मुँह	ख → ह, स्वर-संरचना में परिवर्तन	व्यंजन-परिवर्तन
उच्च	ऊँचा	च्च → च	समूह-सरलीकरण

इन उदाहरणों को श्रुतिसम-भिन्नार्थक युग्म न मानकर ध्वनि-परिवर्तन के निदर्शक के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

अवधी

अवधी में स्वर-संरचना और द्विस्वरीकरण की प्रवृत्तियाँ विशेष अध्ययन की अपेक्षा रखती हैं।

मानक हिंदी	अवधी रूप	परिवर्तन
भाई	भै	स्वर-संरचना परिवर्तन
दो	दुइ	स्वर-संयोजन
गाय	गऊ	स्वर-संयोजन
कुआँ	कुअँ	स्वर-विन्यास परिवर्तन
रुई	रूई	स्वर-संरचना परिवर्तन
तब भी	तऊ	क्षेत्रीय शब्द-रूप

इन रूपों से स्पष्ट होता है कि अवधी में स्वरगत परिवर्तन श्रुतिसाम्य के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण आधार हो सकता है।

बुंदेली

बुंदेली में स्वर-परिवर्तन, ध्वनि-लोप तथा शब्दांत परिवर्तन का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। यहाँ भी मानक रूप और क्षेत्रीय रूप की तुलना करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कोई बोलीगत रूप स्वयं श्रुतिसम-भिन्नार्थक युग्म नहीं है।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में क्षेत्रीय उच्चारण-प्रवृत्तियों का अध्ययन श्रुतिसाम्य के लिए विशेष महत्व रखता है।व → बतथाश → सजैसे संभावित क्षेत्रीय परिवर्तनों का अध्ययन स्थानीय भाषिक प्रमाणों के आधार पर किया जा सकता है।उदाहरणतः—वर्ष → बरस, वचन → बचन, शीत → सीत इत्यादि । इन रूपों को प्रत्यक्ष श्रुतिसम-भिन्नार्थक उदाहरण न मानकर संभावित ध्वनि-परिवर्तन के निदर्शक के रूप में देखना चाहिए।

भोजपुरी

भोजपुरी में स्वर-संरचना, रूपात्मक परिवर्तन, ध्वनि-लोप तथा स्थानीय

शब्द-रूपों की विविधता दिखाई देती है। उदाहरणतः—गया → गइल, आया → अइल, बैठा → बइठल, कहा → कहले, नहीं है → नइखे इत्यादि। ये रूप भोजपुरी की विशिष्ट ध्वनि और रूप-संरचना को दर्शाते हैं; इन्हें सीधे श्रुतिसम-भिन्नार्थक उदाहरण नहीं कहा जा सकता।

श्रुतिसाम्य के प्रमुख प्रकार

हिंदी की बोलियों के संदर्भ में श्रुतिसाम्य को निम्न रूपों में समझा जा सकता है—

पूर्ण श्रुतिसाम्य

जब दो स्वतंत्र शब्दों का उच्चारण समान हो और उनके अर्थ अलग हों। उदाहरण—

शब्द	अर्थ-1	अर्थ-2
कर	हाथ	राजस्व
हार	पराजय	गले का आभूषण
पद	पैर/चरण	पदवी/स्थान
पत्र	पत्ता	लिखित संदेश
धारा	प्रवाह	विधिक उपबंध

आंशिक श्रुतिसाम्य

जब दो शब्दों के उच्चारण में कुछ अंतर हो, किंतु सामान्य श्रवण में वे अत्यंत निकट प्रतीत हों। ऐसे मामलों का निर्णय वास्तविक ध्वन्यात्मक विश्लेषण के आधार पर किया जाना चाहिए।

क्षेत्रीय श्रुतिसाम्य

जब मानक हिंदी में दो शब्दों का उच्चारण अलग हो, किंतु किसी विशिष्ट बोली में ध्वनि-परिवर्तन के कारण वे समान अथवा अत्यंत निकटउच्चरित होने लगें।

अंतर्बोलीय श्रुतिसाम्य

जब एक ही शब्द-रूप दो अलग-अलग बोलियों में प्रयुक्त हो, किंतु दोनों बोलियों में उसके अर्थ अलग हों। ऐसे उदाहरण क्षेत्रीय शब्द-संग्रह और क्षेत्र-कार्य से प्रमाणित किए जाने चाहिए।

श्रुतिसाम्य और अर्थ-भेद

श्रुतिसाम्य की केंद्रीय विशेषता है—ध्वनि-समानता अथवा निकटता + अर्थ-भिन्नता।उदाहरण—

शब्द-युग्म	अर्थ-1	अर्थ-2
कर-कर	हाथ	राजस्व
हार-हार	पराजय	आभूषण
पद-पद	पैर	पदवी
पत्र-पत्र	पत्ता	लिखित संदेश
धारा-धारा	प्रवाह	विधिक उपबंध
आम-आम	फल	सामान्य

इन उदाहरणों में शब्द का अर्थ अकेले ध्वनि से निर्धारित नहीं होता। वाक्य और प्रसंग अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

संदर्भ की भूमिका

श्रुतिसाम्य की स्थिति में संदर्भ अर्थ-निर्धारण का प्रमुख साधन है। **उसने अपने कर से दीप जलाया।** (यहाँ 'कर' का अर्थहाथहै।) सरकार **ने नया कर लगाया।** (यहाँ 'कर' का अर्थराजस्वहै।)

इसी प्रकार—

वह युद्ध में हार गया। (यहाँ 'हार' का अर्थपराजयहै।)

उसने सोने का हार पहना। (यहाँ 'हार' का अर्थगले का आभूषणहै।)

अतः श्रुतिसाम्य का भाषावैज्ञानिक सूत्र इस प्रकार माना जा सकता है—**शब्द + ध्वनि + व्याकरणिक प्रयोग + वाक्य + प्रसंग + अर्थ**।

श्रुतिसाम्य और देवनागरी लिपि

देवनागरी में मात्रा, अनुस्वार, अनुनासिकता तथा अन्य वर्ण-चिह्न शब्द-रूप और अर्थ-भेद को स्पष्ट करने में सहायक हैं। किंतु लिखित रूप और वास्तविक उच्चारण को समान नहीं माना जा सकता।उदाहरणतःदिन–दीन, बल–बाल, शोक–शौकजैसे शब्दों में लिखित रूप ध्वनि-संरचना के अंतर का संकेत देता है। दूसरी ओर किसी बोली में इन ध्वन्यात्मक अंतरों की मात्रा कम या अधिक हो सकती है।इसलिए श्रुतिसाम्य के अध्ययन में तीन स्तरों को अलग रखना आवश्यक है—लिप्यात्मक रूप → वास्तविक उच्चारण → अर्थ।

हिंदी वर्तनी के मानकीकरण ने लिखित भाषा में एकरूपता स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, किंतु बोलीगत उच्चारण अपनी क्षेत्रीय विविधता बनाए रख सकता है।

मानक हिंदी और बोलीगत श्रुतिसाम्य

मानक हिंदी और बोलियों के संबंध को इस प्रकार समझा जा सकता है—

मानक हिंदी : लिखित रूप → मान्य उच्चारण → अर्थ

बोली : स्थानीय रूप → क्षेत्रीय उच्चारण → संदर्भगत अर्थ

किसी बोली में स्वर-परिवर्तन, व्यंजन-परिवर्तन, ध्वनि-लोप या अनुनासिकीकरण के कारण शब्द का उच्चारण मानक हिंदी से भिन्न हो सकता है। यदि यही परिवर्तन किसी दूसरे स्वतंत्र शब्द के उच्चारण को उसके निकट ले आए, तो क्षेत्रीय श्रुतिसाम्य की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

अतः बोलीगत श्रुतिसाम्य का अध्ययनमानक रूप और वास्तविक स्थानीय उच्चारण की तुलनापर आधारित होना चाहिए।

समाजभाषावैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

श्रुतिसाम्य केवल भौगोलिक घटना नहीं है। वक्ता की आयु, शिक्षा, सामाजिक परिवेश, ग्रामीण-शहरी पृष्ठभूमि और भाषिक संपर्क भी उच्चारण को प्रभावित करते हैं।

एक ही क्षेत्र में वृद्ध और युवा वक्ताओं के उच्चारण में अंतर मिल सकता है। शिक्षित वक्ता मानक उच्चारण के निकट हो सकता है, जबकि स्थानीय समुदाय पारंपरिक बोलीगत उच्चारण बनाए रख सकता है।शिक्षा, प्रशासन, संचार-माध्यम और डिजिटल संचार के विस्तार से मानक हिंदी का प्रभाव बढ़ रहा है। इससे कुछ पारंपरिक बोलीगत ध्वनि-रूप कमजोर हो सकते हैं। दूसरी ओर, भाषिक संपर्क से नए ध्वनि-साम्य भी विकसित हो सकते हैं।इस प्रकार श्रुतिसाम्य का अध्ययनभाषा, समाज और क्षेत्रके अंतर्संबंध में किया जाना चाहिए।

श्रुतिसाम्य और भाषिक संपर्क

हिंदी की बोलियाँ पृथक भाषिक द्वीप नहीं हैं। ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली, अवधी, बघेली और भोजपुरी आदि के बीच लंबे समय से भाषिक संपर्क रहा है।भाषिक संपर्क के कारण—शब्दों का आदान-प्रदान;ध्वनि-परिवर्तन;अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकुचन;नए शब्द-रूपों का विकास;उच्चारणगत साम्यजैसी प्रक्रियाएँ सामने आती हैं।

इस दृष्टि से कन्नौजी, ब्रज और बुंदेली जैसे संक्रमण-क्षेत्र विशेष महत्त्व रखते हैं। ऐसे क्षेत्रों में किसी ध्वनि-परिवर्तन का प्रभाव एक से अधिक भाषिक रूपों में दिखाई दे सकता है।

क्षेत्रीय श्रुतिसाम्य का निर्धारण

किसी बोलीगत शब्द-युग्म को श्रुतिसम सिद्ध करने के लिए निम्न क्रम अपनाना अधिक वैज्ञानिक होगा—क्षेत्र-चयन → वक्ता-चयन → शब्द-संग्रह → ध्वनि-रिकॉर्डिंग → ध्वन्यात्मक लिप्यांकन → अर्थ-परीक्षण → संदर्भ-वाक्य → व्युत्पत्तिगत परीक्षण → तुलनात्मक विश्लेषण।

क्षेत्रीय सर्वेक्षण में अलग-अलग आयु और सामाजिक पृष्ठभूमि के वक्ताओं को शामिल करना उपयोगी होगा। यदि किसी संभावित युग्म का समान उच्चारण अनेक वक्ताओं में नियमित रूप से मिलता है और दोनों शब्दों के अर्थ स्वतंत्र हैं, तभी उसे क्षेत्रीय श्रुतिसाम्य की श्रेणी में रखा जाना चाहिए।

प्रस्तावित सर्वेक्षण क्षेत्र

भाषिक रूप	संभावित क्षेत्र
ब्रजभाषा	मथुरा,आगराअलीगढ़,हाथरस, भरतपुर
अवधी	अयोध्या, लखनऊ, सुलतानपुर, गोंडा, बाराबंकी
कन्नौजी	कन्नौज, फर्रुखाबाद, इटावा क्षेत्र
बुंदेली	झाँसी, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बाँदा
भोजपुरी	पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के चयनित क्षेत्र

इन क्षेत्रों के अध्ययन से यह निर्धारित किया जा सकता है कि कोई श्रुतिसाम्यस्थानीय, क्षेत्रीय अथवा व्यापक भाषिक घटनाहै।

श्रुतिसाम्य के निर्धारण के भाषावैज्ञानिक मानदंड

किसी शब्द-युग्म को श्रुतिसम मानने के लिए निम्न छह मानदंड महत्त्वपूर्ण हैं—

1. ध्वन्यात्मक समानता — वास्तविक उच्चारण समान अथवा अत्यंत निकट हो।
2. अर्थगत स्वतंत्रता — दोनों शब्दों के अर्थ पृथक हों।
3. व्युत्पत्तिगत स्वतंत्रता — संभव होने पर दोनों शब्दों के स्रोतों की जाँच की जाए।
4. व्याकरणिक स्थिति — दोनों शब्दों की पद-श्रेणी और वाक्यगत भूमिका निर्धारित की जाए।
5. क्षेत्रीय प्रमाण — एक से अधिक वक्ताओं से उच्चारण की पुष्टि की जाए।
6. संदर्भगत प्रयोग — दोनों शब्दों के वास्तविक वाक्यगत प्रयोग संकलित किए जाएँ।

इस प्रकार केवल समान वर्तनी अथवा सामान्य श्रवण के आधार पर किसी शब्द-युग्म को श्रुतिसम घोषित करना वैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त नहीं होगा।

लोकभाषा और साहित्य में श्रुतिसाम्य

लोकगीत, लोककथा, कहावत, मुहावरे और लोकनाट्य बोलीगत श्रुतिसाम्य के महत्त्वपूर्ण स्रोत हो सकते हैं। लोकभाषा में शब्द केवल शब्दकोशीय अर्थ नहीं रखते, बल्कि स्थानीय संस्कृति और जीवनानुभव से भी जुड़े होते हैं।लोकसाहित्य के अध्ययन में—स्थानीय शब्द → उच्चारण → सांस्कृतिक संदर्भ → अर्थ → मानक हिंदी से तुलनाका क्रम उपयोगी होगा।

साहित्य में ध्वनि और अर्थ का कलात्मक उपयोग अनुप्रास, यमक और श्लेष जैसे काव्य-उपकरणों में मिलता है। किंतु श्लेष और श्रुतिसाम्य को एक नहीं माना जाना चाहिए। श्रुतिसाम्य मुख्यतः ध्वनि-समानता और अर्थ-भिन्नता की भाषिक स्थिति है, जबकि श्लेष में एक ही भाषिक रूप से अनेक अर्थों की कलात्मक अभिव्यक्ति प्रमुख होती है।

भाषिक परिवर्तन और श्रुतिसाम्य

भाषा निरंतर परिवर्तनशील है। ध्वनि-परिवर्तन के कारण जो शब्द किसी समय स्पष्ट रूप से अलग रहे हों, वे बाद में उच्चारण की दृष्टि से निकट आ सकते हैं।इसे इस प्रकार समझा जा सकता है— पुराना शब्द-रूप → ध्वनि-परिवर्तन → परिवर्तित उच्चारण → ध्वन्यात्मक निकटता → संभावित श्रुतिसाम्य।

इसलिए श्रुतिसाम्य को केवल स्थिर शब्द-संबंध न मानकरभाषिक परिवर्तन की गतिशील प्रक्रियाके रूप में भी देखा जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त होते हैं कि श्रुतिसम-भिन्नार्थकता हिंदी की ध्वनि और शब्दार्थ-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। श्रुतिसाम्य का निर्धारण केवल देवनागरी वर्तनी के आधार पर नहीं किया जा सकता। वास्तविक उच्चारण श्रुतिसाम्य के निर्धारण का प्रमुख आधार है। हिंदी की बोलियों में स्वर-परिवर्तन, व्यंजन-परिवर्तन, ध्वनि-लोप, अनुनासिकीकरण तथा शब्दांत परिवर्तन जैसी प्रक्रियाएँ ध्वनि-साम्य की संभावनाएँ उत्पन्न कर सकती हैं। बोलीगत शब्द-रूप और श्रुतिसम-भिन्नार्थक शब्द एक ही संकल्पना नहीं हैं। किसी शब्द-युग्म को श्रुतिसम सिद्ध करने के लिए दोनों शब्दों का स्वतंत्र अर्थ और समान अथवा अत्यंत निकट उच्चारण प्रमाणित करना आवश्यक है। समनामता और बहुअर्थकता के अंतर को स्पष्ट किए बिना श्रुतिसम शब्दों का वैज्ञानिक वर्गीकरण संभव नहीं है। क्षेत्रीय श्रुतिसाम्य के लिए वास्तविक भाषिक सर्वेक्षण और अनेक वक्ताओं से सत्यापन आवश्यक है। भाषिक संपर्क और मानकीकरण दोनों श्रुतिसाम्य की प्रकृति को प्रभावित कर सकते हैं। लोकभाषा और लोकसाहित्य क्षेत्रीय श्रुतिसाम्य के जीवंत अध्ययन के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। हिंदी की बोलियों में श्रुतिसाम्य का अध्ययन ध्वनिविज्ञान, शब्दार्थविज्ञान, बोलीविज्ञान और समाजभाषाविज्ञान के अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है।

अतः हिंदी की बोलियों में श्रुतिसाम्य का अध्ययन केवल शब्द-संग्रह का कार्य नहीं, बल्किध्वनि, अर्थ, क्षेत्र, समाज और भाषिक परिवर्तन के अंतर्संबंध का अध्ययनहै। भविष्य में क्षेत्रीय ध्वनि-रिकॉर्डिंग, ध्वन्यात्मक लिप्यांकन, शब्दार्थ-परीक्षण और वक्ता-आधारित सर्वेक्षण के माध्यम से इस क्षेत्र में अधिक प्रमाणिक निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं। इससे हिंदी की आंतरिक भाषिक विविधता तथा उसके निरंतर विकसित होते स्वरूप को समझने में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलेगी।

लेखक राजकीय महाविद्यालय, गोंडा, अलीगढ़ में सहायक आचार्य, हिंदी के रूप में कार्यरत हैं।

संदर्भ-सूची

1. तिवारी, भोलानाथ,भाषा विज्ञान। किताब महल, इलाहाबाद, 2008।
2. तिवारी, भोलानाथ,भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा। किताबघर प्रकाशन, 2012।
3. तिवारी, भोलानाथ,भाषा विज्ञान कोश। ज्ञानमंडल, 2020।
4. वर्मा, धीरेन्द्र,हिंदी भाषा का इतिहास। हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।
5. बाहरी, हरदेव,हिंदी की बोलियाँ एवं उपभाषाएँ।
6. सिंह, विजेंद्र प्रताप, ब्रज का भाषा विज्ञान, वृजभाषा शोध संस्थान, वृदावन, मथुरा 2025 ।
7. सिंह, विजेंद्र प्रताप, व्यतिरेकी भाषा विज्ञान, आकांक्षा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014 ।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

डिजिटल युग में हिंदी भाषा का बदलता स्वरूप



भावना कथूरिया



ज्योति भारद्वाज

हिंदी के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन अनुवाद और आवाज़ पहचान जैसी तकनीकों के विकास पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। हिंदी साहित्य और महत्वपूर्ण रचनाओं को डिजिटल रूप में सुरक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे आने वाली पीढ़ियों के लिए आसानी से उपलब्ध रहें। साथ ही, हिंदी का विकास भारत की अन्य भाषाओं के साथ मिलकर होना चाहिए, ताकि देश की भाषाई विविधता सुरक्षित रहे।

भाषा केवल विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि संस्कृति, पहचान और सामाजिक जीवन का भी महत्वपूर्ण हिस्सा है। समय के साथ समाज बदलता है, और भाषा भी बदलती है। आज इंटरनेट, मोबाइल फोन, सामाजिक माध्यम, ऑनलाइन शिक्षा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जीवन का हिस्सा बन चुके हैं। इन तकनीकी बदलावों का प्रभाव हिंदी भाषा पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

हिंदी भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल 22 भाषाओं में से एक है। संविधान का अनुच्छेद 351 हिंदी के विकास और प्रसार पर जोर देता है। डिजिटल युग में हिंदी पुस्तकों और समाचार-पत्रों तक सीमित न रहकर वेबसाइट, सामाजिक माध्यम, ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल समाचार और मनोरंजन मंचों तक पहुँच गई है।

डिजिटल दुनिया में हिंदी का बदलता रूप

इंटरनेट ने हिंदी को अभिव्यक्ति के लिए एक बड़ा मंच दिया है। आज लोग हिंदी में समाचार पढ़ते हैं, वीडियो देखते हैं, पढ़ाई करते हैं, जानकारी खोजते हैं और दूसरों से बातचीत करते हैं। स्मार्टफोन और इंटरनेट की आसान उपलब्धता ने इस बदलाव को और तेज कर दिया है।

सामाजिक माध्यमों ने हिंदी के स्वरूप को विशेष रूप से प्रभावित किया है। व्हाट्सऐप, यूट्यूब, इंस्टाग्राम और अन्य मंचों पर लोग सरल और बातचीत वाली हिंदी का प्रयोग करते हैं। हिंदी के साथ अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग भी आम हो गया है, जैसे—"मुझे अपडेट कर देना", "आज मीटिंग है" आदि।" यह बदलाव बताता है कि भाषा आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार स्वयं को ढाल रही है। एक अन्य महत्वपूर्ण बदलावरोमन हिंदीका बढ़ता प्रयोग है। मोबाइल पर लोग हिंदी को देवनागरी के बजाय अंग्रेज़ी अक्षरों में लिखते हैं, जैसे—"Tum kahan ho?" या "Main ghar par hoon." यह तरीका तेज और सुविधाजनक है, लेकिन इसके कारण देवनागरी में लिखने का अभ्यास कम होने की संभावना भी रहती है।

नए शब्द और डिजिटल शिक्षा

तकनीक के कारण हिंदी में कई नए शब्दों का प्रयोग बढ़ा है। ऑनलाइन, मोबाइल, ऐप, वीडियो, पासवर्ड, डाउनलोड, लिंक और चैट जैसे शब्द अब सामान्य बातचीत का हिस्सा बन चुके हैं। दूसरी भाषाओं से शब्द ग्रहण करना किसी भी जीवंत भाषा की स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसलिए इन परिवर्तनों को केवल हिंदी के लिए खतरा मानना उचित नहीं होगा।

डिजिटल शिक्षा ने भी हिंदी के लिए नए अवसर पैदा किए हैं। विद्यार्थी अब हिंदी में ऑनलाइन व्याख्यान, अध्ययन सामग्री, ई-पुस्तकें और शैक्षिक वीडियो आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। इससे उन विद्यार्थियों को विशेष लाभ मिलता है जो अपनी परिचित भाषा में विषयों को

बेहतर ढंग से समझते हैं। यूनेस्को की 2025 की रिपोर्ट में भी मातृभाषा और बहुभाषी शिक्षा के महत्व पर जोर दिया गया है।

हिंदी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास ने हिंदी के लिए संभावनाओं के नए द्वार खोले हैं। आवाज़ पहचान, मशीन अनुवाद, वाणी से पाठ में परिवर्तन और डिजिटल सहायक जैसी तकनीकों में हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। इससे हिंदी भाषी लोगों के लिए डिजिटल सेवाओं का उपयोग अधिक आसान हो सकता है।

हालाँकि, हिंदी के लिए बेहतर भाषा-तकनीक विकसित करने में कई चुनौतियाँ हैं। हिंदी में अलग-अलग क्षेत्रों की बोलियाँ, उच्चारण और बोलचाल के तरीके पाए जाते हैं। इन्हें समझने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणालियों को पर्याप्त और गुणवत्तापूर्ण भाषाई आँकड़ों की आवश्यकता होती है।

प्रमुख चुनौतियाँ

डिजिटल माध्यमों में हिंदी के बढ़ते प्रयोग के साथ कुछ समस्याएँ भी सामने आई हैं। सामाजिक माध्यमों पर जल्दी-जल्दी लिखने के कारण वर्तनी और व्याकरण की गलतियाँ बढ़ रही हैं। हिंदी और अंग्रेज़ी के अत्यधिक मिश्रण से औपचारिक हिंदी का प्रयोग कम हो सकता है। रोमन हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता भी देवनागरी लेखन के अभ्यास को प्रभावित कर सकती है।

इसके अलावा, इंटरनेट पर गलत और भ्रामक जानकारी का तेजी से प्रसार एक गंभीर समस्या है। स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक मुद्दों से संबंधित गलत जानकारी लोगों को प्रभावित कर सकती है। हिंदी को डिजिटल दुनिया में और मजबूत बनाने के लिए बेहतर शब्दकोश, भाषाई आँकड़े, अनुवाद उपकरण और वाणी-आधारित तकनीकों की भी आवश्यकता है।

आवश्यक कदम

हिंदी के डिजिटल विकास के लिए शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य, तकनीक और रोजगार जैसे क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण हिंदी सामग्री बढ़ाई जानी चाहिए। युवाओं को डिजिटल मंचों पर हिंदी का रचनात्मक प्रयोग करने के साथ-साथ देवनागरी में सही लेखन के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

हिंदी के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन अनुवाद और आवाज़ पहचान जैसी तकनीकों के विकास पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। हिंदी साहित्य और महत्वपूर्ण रचनाओं को डिजिटल रूप में सुरक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे आने वाली पीढ़ियों के लिए आसानी से उपलब्ध रहें। साथ ही, हिंदी का विकास भारत की अन्य भाषाओं के साथ मिलकर होना चाहिए, ताकि देश की भाषाई विविधता सुरक्षित रहे।

अत: डिजिटल युग ने हिंदी को समाप्त नहीं किया, बल्कि उसके प्रयोग के तरीकों को बदल दिया है। हिंदी अब पुस्तकों और समाचार-पत्रों से आगे बढ़कर मोबाइल फोन, सामाजिक माध्यम, ऑनलाइन शिक्षा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता तक पहुँच चुकी है। इसके शब्द, लेखन शैली और अभिव्यक्ति के तरीके लगातार बदल रहे हैं।

भाषा में परिवर्तन स्वाभाविक है। आवश्यकता इस बात की है कि हम आधुनिक तकनीक और नए शब्दों को अपनाते हुए हिंदी की समृद्धि और देवनागरी लिपि के महत्व को भी बनाए रखें। यदि डिजिटल तकनीक का सही और संतुलित उपयोग किया जाए, तो यह हिंदी को अधिक आधुनिक, व्यापक और आने वाली पीढ़ियों के लिए उपयोगी बनाने का प्रभावी माध्यम बन सकती है।

लेखिका भावना कथूरिया राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली में सहायक अनुसंधान अधिकारी हैं।

संदर्भ:

1. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग।संवैधानिक प्रावधान एवं अनुच्छेद 351।
2. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग।भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाएँ।
3. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग।राजभाषा नीति।
4. यूनेस्को।भारत में शिक्षा की स्थिति संबंधी रिपोर्ट 2025: मातृभाषा और बहुभाषी शिक्षा।
5. यूनेस्को।बहुभाषी इंटरनेट को आगे बढ़ाना: यूनिवर्सल एक्सेप्टेंस और बहुभाषी डिजिटल समावेशन, 2026।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

कर्नाटक में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का विकास

आज कर्नाटक में हिंदी उत्तरोत्तर विकास की सीढियाँ चढ़ रही है। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी यहाँ अपनी सम्पूर्ण जीवंतता एवं प्रभावी स्वरुप के साथ विकसित हुई है। स्थानीय लोगों द्वारा हिंदी को बड़े पैमाने पर अपनाया जाना अहिन्दी भाषी प्रदेश कर्नाटक में हिंदी के उज्जवल भविष्य की संभावना को सुनिश्चित करता है। यही कर्नाटक में हिंदी की समृद्धि की सूचक भी है। यह अत्यंत सुखद एवं हर्ष की बात है कि यहाँ हिंदी कन्नड़ के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर चल रही है। 30 -35 वर्षों पहले जो असंभव सा लग रहा था वह आज संभव हो चुका है और सच्चाई का सूरज बनकर चमक रहा है।



डॉ. ज्ञानचंद मर्मज्ञ

कर्नाटक दक्षिण भारत में स्थित एक अहिन्दी भाषी राज्य है जो 1973 तक मैसूर राज्य के नाम से जाना जाता था। यहाँ की मातृभाषा कन्नड़ है। कन्नड़ के अलावा यहाँ तमिल,तेलगू तुलु,कोंकणी और कोडवा भाषाएँ भी बोली जाती हैं। यहाँ विभिन्न जन जातियां बसती हैं जो यहाँ की धनी संस्कृति को समृद्ध करती हैं। यह एक बहुसांस्कृतिक प्रदेश है जहाँ देश के अन्य प्रांतों के लोग भी बड़ी संख्या में रहते हैं। यहाँ के लोग अपनी मातृ भाषा कन्नड़ से बहुत प्यार करते हैं परन्तु भाषा के सन्दर्भ में उनकी सोच अत्यंत शुद्ध एवं उदार है यही कारण है कि वे अन्य भाषाओँ को भी भरपूर मान-सम्मान देते हैं। भाषा के विषय में संकीर्ण दृष्टिकोण मनुष्य की सोच की विपन्नता का परिचायक होता है जो समाज में असंतुलन पैदा करता है और जन मानस के विचारों को दूषित करता है। मुझे यह कहते हुए ख़ुशी हो रही है कि कर्नाटक के लोग अपनी मातृ भाषा के अलावा दूसरी भाषाओँ का आदर कर अपनी विचारों की सम्पन्नता को सिद्ध करते हैं। सामाजिक एकता और सांस्कृतिक परिपक्वता भी भाषा की समृद्धि से ही प्राप्त होती है जो कर्नाटक की विशेषताओं में शुमार है। भाषा, विकसित होने के लिए विचारों का खुलापन मांगती है जो कर्नाटक की उर्वरा भूमि में है। यही कारण है कि कर्नाटक जिस तीव्र गति से विकास की सीढियाँ चढ़ रहा है उसी गति से यहाँ हिंदी भी संपर्क भाषा के रूप में अपने कदम बढ़ा रही है। हिंदी अपने सात्विक गुणों के कारण कर्नाटक के विकास में अपना अभूतपूर्व योगदान दे रही है। कर्नाटक में हिंदी का विकास कर्नाटक के विकास के सामानांतर हो रहा है अगर ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

परन्तु सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति से पूर्व हिंदी की स्थिति यहाँ ऐसी नहीं थी। स्थानीय लोग हिंदी बिलकुल भी नहीं समझते थे और जो लोग थोड़ा बहुत जानते थे उनकी संख्या बहुत कम थी। किसी भी भाषा के विकास में सबसे महत्वपूर्ण बात दैनिक जीवन में उसकी अनिवार्यता होती है जो यहाँ नहीं थी। किसी भी भाषा की संरचना एवं उसमें निहित तमाम विशेषताएं उसके स्वभाव का निर्माण करती हैं जो भाषा के प्रचार प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है परन्तु भाषा के स्वभाव की विशेषताएं जन मानस द्वारा भाषा को अपनाने की अनिवार्यता नहीं होतीं । लोग भाषा को तभी अंगीकार कर पाते हैं जब भाषा के शब्दों से उनकी रोटी की सुगंध आने लगती है। दूसरे शब्दों में कहें तो जब भाषा उनके रोजगार से जुड़कर उनकी आवश्यकताओं की गठरी को अपने सर पर ढोने

लगती है और उनकी खाने की थाली को कभी भूख की तड़प का पर्याय नहीं बनने देती,जब भाषा उनके बच्चों के अधरों पर मुस्कान बनकर खिलने लगती है और उनकी समृद्धि के नए आयाम गढ़ने लगती है तब उन्हें उस भाषा के महत्व का पता चलता है और लोग उस भाषा को स्वतः अपनाने लगते हैं। ऐसा ही कुछ कर्नाटक में हुआ जब सूचना प्रद्योगिकी क्रांति के बीज यहाँ पर उगने प्रारम्भ हुए। धीरे धीरे इनका विस्तार इतना हो गया कि इसमें काम करने के लिए स्थानीय लोगों के अलावा देश के विभिन्न भागों से योग्य इंजिनीयर्स की आवश्यकता पड़ने लगी। कुशल नौजवान इंजिनीयर्स अपने साथ अपनी भाषा और संस्कृति भी लेकर यहाँ आये इसमें अधिकतर हिंदी भाषी थे। हिंदी की सुगंध धीरे-धीरे चारो ओर बिखरने लगी। हिंदी सुबह की चमकती हुई रुपहली धूप की तरह कर्नाटक के कण कण में समाने लगी। स्थानीय लोग हिंदी के महत्व को समझने लगे। हिंदी उनके रोजगार की भाषा बनने लगी। वे हिंदी सीखने और बोलने लगे। कर्नाटक की आर्थिक प्रगति में हिंदी का योगदान रेखांकित होने लगा। हिंदी को लेकर कर्नाटक का परिदृश्य बदलने लगा। हिंदी संपर्क भाषा के रूप में हर तरफ छा गई। जो लोग हिंदी से परिचित भी नहीं थे वे अपने ग्राहकों से हिंदी में संवाद करने लगे। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के साथ कर्नाटक का आर्थिक विकास बुलंदियों को छूने लगा जिसके साथ हिंदी का भी विस्तार तीव्र गति से होने लगा। मेरा स्वयं का अनुभव है ,वर्ष 1985 से पूर्व यहाँ हिंदी समझने और उसमें संवाद करने वालों की

संख्या नगण्य थी। उत्तर भारत से यहां आने वाले लोग हिंदी सुनने के लिए तरस जाते थे । स्थानीय दुकानों से कुछ खरीदने समय हिंदी भाषी लोगों को बहुत ही परेशानी का सामना करना पड़ता था। अधिकतर स्थानीय विक्रेता हिंदी नहीं समझ पाते थे और हिंदी भाषी लोग कन्नड़ भी नहीं समझ पाते थे जिससे यह परेशानी और भी जटिल हो जाती थी। ऐसी स्थिति में संकेतों से काम चलाना पड़ता था। उन समय कहीं भी आने जाने के लिए बस ,टैक्सी अथवा ऑटो में यात्रा करना भी अत्यंत मुश्किल भरा काम होता था, जिन्हें अंग्रेजी आती थी वो तो किसी तरह अपना काम चला लेते थे परन्तु अन्य लोगों के लिए बहुत ही कठिन था। आज स्थिति बिलकुल बदल गई है।

कर्नाटक अकूत संभावनाओं का प्रदेश है। कर्नाटक की राजधानी बैंगलोर है जो भारत गणराज्य का तीसरा सबसे बड़ा शहर है। यह भारत का सूचना प्रद्योगिकी केंद्र है। यहाँ की जनसँख्या १ करोड़ २७ लाख से भी अधिक है। इसका आयतन और घनत्व दोनों ही बहुत तेज़ी से बढ़ रहे हैं उसी के साथ यहाँ शहरी सुविधाओं का विस्तार भी बड़ी तेज़ी से हो रहा है। यह एक तथ्य है कि जब जनसंख्या का घनत्व बढ़ने लगता है तो सुविधाएँ कम पड़ने लगती हैं। भविष्य की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए यहाँ मेट्रो एवं अन्य शहरी सुविधाओं का निर्माण कार्य बहुत ही तीव्र गति से हो रहा है ,संभव है आने वाले कुछ वर्षों में सम्पूर्ण शहर में मेट्रो का जाल बिछ जाये। शहर में बढ़ते हुए निर्माण कार्यों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए देश के दूसरे भागों से मज़दूर बड़ी संख्या में यहाँ आये हैं। इसमें हिंदी भाषी मज़दूरों की संख्या बहुतायत है। इन्हें हिंदी के अलावा कोई दूसरी भाषा नहीं आती। ये सोचते भी हिंदी में हैं और सपने भी हिंदी में ही देखते हैं। इनके सपनों का रंग इनकी मेहनत से अवश्य भरता है परन्तु उन रंगों में हिंदी की मिठास घुली हुई होती है। ये अपनी जरूरतों की चीजें छोटी-छोटी दुकानों से खरीदते हैं जिन्हें स्थानीय लोग संचालित करते हैं। इस तरह इनका संवाद उन दुकानदारों से होता है जो कर्नाटक के निम्न मध्यमवर्गीय और मध्यमवर्गीय लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये वही लोग है जो कुछ वर्षों पहले हिंदी का एक शब्द भी नहीं समझ पाते थे परन्तु आज इनका व्यापार हिंदी के रथ पर आसीन होकर तीव्र गति से बढ़ रहा है। उत्तर भारत एवं अन्य हिंदी भाषी क्षेत्रों से आये हुए हिंदी भाषी लोगों की आवश्यकता को स्थानीय लोगों ने समझा और महसूस किया कि हिंदी का प्रयोग उनके व्यापार को बढ़ा सकता है तो उन्होंने हिंदी सीखना और बोलना प्रारम्भ कर दिया। हिंदी का भरपूर स्वागत हुआ। हिंदी संपर्क भाषा के रूप में चहकने लगी। इस प्रकार उत्तर भारत से आने वाले मज़दूरों एवं रोजगार की तलाश में यहाँ आने वाले अन्य लोगों ने हिंदी के प्रचार प्रसार में अपनी अहम भूमिका निभाई है। हिंदी के प्रचार प्रसार में इस वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका से नाकारा नहीं जा सकता। यह सत्य है कि जब कोई भाषा रोटी से जुड़ जाती है तो उसका प्रचार स्वतः होने लगता है और वह भाषा स्वयं संपन्न होने लगती है और यही कर्नाटक के मामले में हुआ। हिंदी यहाँ लोगों के रोजगार से जुड़ती चली गयी। यहाँ के व्यापारी और छोटे दूकानदार जो पहले हिंदी का एक शब्द भी नहीं समझ पाते थे आज वे धड़ल्ले से हिंदी बोलते हैं। उनकी आर्थिक उन्नति में हिंदी आगे बढ़कर सहयोग दे रही है। इतना ही नहीं दशकों से यहाँ बसे हुए उत्तर भारतीय लोग भी कन्नड़ सीखकर स्थानीय भाषा के प्रति अपना सम्मान एवं प्रतिवद्धता प्रकट कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप भाषाई एकता दिन प्रतिदिन सुदृढ़ हो रही है जो अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी के प्रति स्थानीय लोगों के मन में एक प्रेम का वातावरण निर्मित कर रही है है। इस प्रकार दोनों ही भाषाएँ समृद्ध हो रही हैं और हिंदी के विकास में सहयोग का वातावरण बन रहा है। आर्थिक प्रगति के नए अध्याय लिखते हुए कर्नाटक में हिंदी की समृद्धि,अभिवृद्धि और पुरजोर पहचान में सूचना प्रौद्योगिकी ने महत्वपूर्ण अवदान दिया तो यहाँ से प्रकाशित होने वाले हिंदी अख़बारों एवं साहित्यिक संस्थाओं द्वारा आयोजित किये जाने वाले हिंदी - कार्यक्रमों ने इस महायज्ञ में अपना अंशदान देकर उसे विस्तार भी दिया ।

आज कर्नाटक में हिंदी उत्तरोत्तर विकास की सीढियाँ चढ़ रही है। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी यहाँ अपनी सम्पूर्ण जीवंतता एवं प्रभावी स्वरुप के साथ विकसित हुई है। स्थानीय लोगों द्वारा हिंदी को बड़े पैमाने पर अपनाया जाना अहिन्दी भाषी प्रदेश कर्नाटक में हिंदी के उज्जवल भविष्य की संभावना को सुनिश्चित करता है। यही कर्नाटक में हिंदी की समृद्धि की सूचक भी है। यह अत्यंत सुखद एवं हर्ष की बात है कि यहाँ हिंदी कन्नड़ के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर चल रही है। 30 -35 वर्षों पहले जो असंभव सा लग रहा था वह आज संभव हो चुका है और सच्चाई का सूरज बनकर चमक रहा है। यहाँ हिंदी का स्वरुप संपर्क भाषा के रूप में इतनी व्यापकता और बृहद रूप ले चुका है कि इसके विस्तार की लहर को रोकना असंभव है। अगर आज यह कर्नाटक की संपर्क भाषा बनकर हर अधर को अभिसिंचित कर रही है तो इसका मुख्य कारण इसका रोजगार की भाषा के रूप में उभरना है। सचमुच इसका विस्तार देखकर यही लगता है जैसे यह लोगों के मन प्राण में बस चुकी है और सांसों में बह रही है। हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि भाषा जहाँ मानवीय संस्कारों को समृद्ध करती है वहीँ सामाजिक सरोकारों को संरक्षण देते हुए अर्थिक विकास का अध्याय भी लिखती है। इतना ही नहीं, भाषा ही चिंतक की दिशा तय करती है और आचरण की मूल भावना को स्वर भी देती है। इस प्रकार हिंदी कर्नाटक में संपर्क भाषा के रूप में अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल सिद्ध हुई है।

लेखक ज्ञानचंद मर्मज्ञ प्रतिष्ठित कवि,लेखक एवं संपादक हैं। वे साहित्य साधक मंच,बैंगलोर के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे हैं।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की भूमिका: एक विश्लेषण

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन 1977 में उन्होंने हिन्दी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई क्योंकि उन्होंने संयुक्त राष्ट्र महासभा को संबोधित करते हुए अपना भाषण हिन्दी में दिया था। वाजपेयी जी हिन्दी के विद्वान थे और उन्होंने कई कविताएँ भी लिखी थीं (बाला, 2019)।



डॉ. शिव प्रकाश कटियार

हिन्दी भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में एक महत्वपूर्ण भाषा बनती जा रही है। हिन्दी विश्व की लगभग 3000 भाषाओं में से एक है। विश्व स्तर पर हिन्दी का जलवा कायम है। 2001 की जनगणना के अनुसार, देश में कुल 122 भाषाएँ और 234 मातृभाषाएँ हैं। 26 जनवरी 1950 को अपनाए गए भारतीय संविधान में हिन्दी को आधिकारिक भाषाओं में से एक घोषित किया, जबकि अंग्रेजी को एक सहायक आधिकारिक भाषा के रूप में बरकरार रखा गया। हिन्दी दिवस का मुख्य उद्देश्य हिन्दी के प्रयोग और प्रशंसा को बढ़ावा देना, इसकी समृद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत का जश्न मनाना और इसके निरंतर विकास और प्रयोग को प्रोत्साहित करना है। इस दिन विभिन्न गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं, जिनमें सांस्कृतिक कार्यक्रम, साहित्यिक आयोजन और शैक्षिक पहचान शामिल है, जिनका उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय पहचान में हिन्दी के महत्व को उजागर करना है। स्कूल, कॉलेज, सरकारी कार्यालय और सांस्कृतिक संगठन अक्सर हिन्दी में कविता पाठ, निबंध लेखन प्रतियोगिता, वाद-विवाद और चर्चा जैसे कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

समकालीन भारत में हिन्दी भाषा का महत्व इस तथ्य से समझा जा सकता है कि सरकारी संचार में इसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। यह इसे देश की प्रशासनिक प्रक्रियाओं और सार्वजनिक सेवाओं का एक महत्वपूर्ण अंग बनता है। न केवल यही, बल्कि देश भर के शैक्षणिक संस्थान हिन्दी को अपने पाठ्यक्रम में शामिल कर रहे हैं। इससे छात्रों में राष्ट्रीय पहचान और सांस्कृतिक जागरूकता की भावना का विकास होता है।

राजभाषा नीति – संवैधानिक प्रावधान:

14 सितंबर 1949 को संविधान सभा द्वारा हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया था। इसे भारत के संविधान में शामिल किया गया, जिसे 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया। हम हर साल 14 सितंबर को हिन्दी दिवस मनाते हैं।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु आयोजित विभिन्न गतिविधियाँ:

विभिन्न कार्यालयों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए निम्नलिखित गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं, जैसे: हिन्दी सप्ताह, हिन्दी दिवस, कवि सम्मेलन, हिन्दी पखवाड़ा आदि का आयोजन। इन अवसरों पर विभिन्न प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं, जैसे निबंध प्रतियोगिता, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता, टिप्पणी और ड्राफ्टिंग प्रतियोगिता, श्रुतिलेखन, वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि। हिन्दी में उत्कृष्ट कार्य करने पर विभिन्न पुरस्कार भी प्रदान किए जाते हैं।

विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार, हिन्दी विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है। हिन्दी विश्व भाषा के रूप में वैश्विक पटल पर उभरी है। फिजी, मॉरीशस, गुयाना, सूरीनाम और नेपाल की जनता ही हिन्दी बोलती है। फिजी में, हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। आज के संदर्भ में, हिन्दी भाषा केवल साहित्यिक या सम्प्रेषण का माध्यम नहीं है। वह तो कामकाज, कार्यपद्धति, विज्ञान, तकनीक, प्रौद्योगिकी, विधि, चिकित्सा, वाणिज्य के साथ-साथ संगणक, सेल्यूलर, इंटरनेट, सैटेलाइट, सूचना, सुपरहाइवे, की भाषा बनती जा रही है। संचार भाषा के सभी गुण हिन्दी में हैं। हिन्दी का संबंध संस्कृत, पालि और भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी, स्पेनिश, डच, पुर्तगाली, आदि कई भाषाओं से है। हिन्दी भाषा के प्रायः सभी महत्वपूर्ण देशों में अध्ययन-अध्यापन में भागीदार है। अकेले अमेरिका में ही लगभग 150 से ज्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिन्दी का पठन-पाठन हो रहा है (मोहम्मद, 2026)।

10 जनवरी को प्रतिवर्ष "विश्व हिन्दी दिवस" मनाया जाता है, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के प्रयोग पर प्रकाश डालता है। इस अवसर पर विश्व भर के भारतीय दूतावासों में संगोष्ठियाँ, काव्य पाठ, कवि सम्मेलन और हिन्दी का आयोजन किया जाता है। यूनेस्को और आईसीसीआर: इंडियन काउंसिल फॉर कल्चरल रिलेशन्स जैसी संस्थाएँ

हिन्दी को सांस्कृतिक राजनय के माध्यम के रूप में मान्यता देती हैं। UNESCO's World Heritage Centre द्वारा भारत की विश्व धरोहर स्थलों का हिन्दी विवरण प्रकाशित किया जाना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यद्यपि हिन्दी को अभी तक संयुक्त राष्ट्र की अधिकृत भाषा का दर्जा प्राप्त नहीं हुआ है, तथापि भारत सरकार लगातार इस दिशा में सक्रिय है। MEA India (2025) के अनुसार, हिन्दी में, संयुक्त राष्ट्र महासभा के दौरान अनुवाद सेवाएँ प्रारम्भ की गई हैं और हिन्दी भाषणों को आधिकारिक दस्तावेजों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया जारी है। यह संकेत देता है कि हिन्दी आने वाले दशक में विश्व की राजनैतिक व राजनयिक भाषा संरचना में और सशक्त भूमिका निभा सकता है। हिन्दी को और सशक्त बनाने के लिए, जनगणना और Ethnologue जैसे स्रोतों के माध्यम से हिन्दी के उपयोग की सटीक माप की जा सकती है। हिन्दी लेखन में अनुसंधान आधारित पद्धतियों, अंग्रेजी सारांशों और द्विभाषिक प्रकाशन मॉडल को प्रोत्साहित किया जाए (कोहली, 2025)।

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन 1977 में उन्होंने हिन्दी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई क्योंकि उन्होंने संयुक्त राष्ट्र महासभा को संबोधित करते हुए अपना भाषण हिन्दी में दिया था। वाजपेयी जी हिन्दी के विद्वान थे और उन्होंने कई कविताएँ भी लिखी थीं (बाला, 2019)।

माइक्रोसॉफ़्ट, गूगल, याहू, आईबीएम तथा ओरकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार को देखते हुए हिन्दी प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। यह एक तथ्य है कि अंग्रेजी का दबाव आज भी बरकरार है, इसके बावजूद भी हिन्दी बहुत ही तीव्र गति से सुख-दुख, आशा-आकांक्षा की संवाहक बनाने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के कई देशों में हिन्दी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं। आज विश्व के कई विकसित देश जैसे-अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान और ऑस्ट्रिया जैसे देश भी हिन्दी के पठन-पाठन में रुचि दिखा रहे हैं (भागीरथ, 2018)।

अत: अंतर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे कि यूनेस्को, यूनाइटेड नेशंस तथा प्रवासी भारतीय कार्यक्रमों में हिन्दी का उपयोग बढ़ाने की आवश्यकता है। भारतीय कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग पर जागरूकता का स्तर कम है, जो कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने में मदद करने में असमर्थ रहता है। यह एक बड़ी चिंता का विषय है और हिन्दी के प्रयोग में सुधार के लिए इस मुद्दे को तत्काल आधार पर संबोधित करने की आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में हिन्दी की अनिवार्यता की जा सकती है। केंद्र और राज्य सरकारों के सभी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग अनिवार्य किया जा सकता है।

लेखक राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान में परामर्शदाता, आरटीआई हैं।

संदर्भ:

1. बाला, सुमन (2019), "विश्व में हिन्दी भाषा की लोकप्रियता", जर्नल आफ एडवांसेस अँड स्कॉलर्ली रिसर्चेस इन अल्लाइड एडुकेशन, वॉल्यूम.16, मई 2019, पेज 1338-1340।
2. भागीरथ (2018), "वैश्विक स्तर पर हिन्दी की भूमिका, रिव्यू ऑफ रिसर्च, वॉल्यूम.6, इश्यू 1, 2018, पेज 1-4।
3. कोहली, गिरीष एस (2025), "वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा का महत्व, इंटरनेशनल जर्नल आफ एडवांस एकेडमिक स्टडीज, अंक 7, पेज 185-187।
4. मोहम्मद, मलिक (2026), "विश्व में हिन्दी", इंटरनेशनल जर्नल आफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, वॉल्यूम.14, इश्यू 6, जून 2026, पेज एच 338-एच 348

-डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर' बहुचर्चित द्विभाषी साहित्यकार, सम्पादक तथा समीक्षक हैं। आपकी रचनाओं का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हो चुका है।



डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर

1. विडम्बना

पारसपुर के कवि सम्मेलन की तैयारी इस बार भी धूमधाम से की गयी थी। श्रोताओं के के लिए सामने कुर्सियाँ सजी हुई थीं। विशिष्ट अतिथियों के लिए अग्रिम पंक्ति में सोफे रखवाये गये थे। मुख्य चौराहे पर प्रत्येक वर्ष होने वाले इस कार्यक्रम में पंडाल लगभग भरा रहता था। संयोग से इस वर्ष ठीक उसी दिन कार्यक्रम स्थल से बमुश्किल दो सौ मीटर की दूरी पर एक नाच का प्रोग्राम भी आयोजित किया गया था। हसीनाओं का नाच देखने के लिए दो एलसीडी भी लगायी गयी थीं। नाच शुरू होने से दो घंटे पहले ही भीड़ इकट्ठा थी। आगे खड़े होने की होड़ में जमकर धक्का-मुक्की हो रही थी। उधर कवि सम्मेलन शुरू हो गया था। आयोजक मंडल के सदस्य और उपस्थित कुछ बुज़ुर्ग काव्य-रसिक बीच-बीच में तालियाँ बजा रहे थे और ख़ाली कुर्सियाँ श्रोताओं का रास्ता ताक रही थीं।

2. कोई बात नहीं

रोहित अपने कमरे में लैपटॉप पर ईमेल चेक कर रहा था कि तभी चाय लेकर माँ आ गयी और उधर रोहित की पत्नी नीतू का फोन भी बज उठा, "सुनो जी, तुम्हें एक बात बतानी है। पापा हॉस्पिटल से मेडिकल टेस्ट की रिपोर्ट ले आये हैं। मैं कभी माँ नहीं बन सकती। अब यहाँ जी नहीं लग रहा है। रोहित मैं टूट चुकी हूँ। हम एक बच्चा गोद भी तो ले सकते हैं।"

"बहू से कह दो मायके में ही रहो। यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं।" पास खड़े सब सुन रही माँ ने तुनकते हुए रोहित से कहा। "मम्मी रुको, डायग्नोस्टिक सेंटर की ईमेल आ गयी शायद!" कहते हुए रोहित फटाफट मेल पढ़ने लगा। उसकी आँखें फटी की फटी रह गयीं। "क्या हुआ बेटा!" माँ ने पूछा। "मम्मी, मैं कभी पिता नहीं बन सकता। ओहह! लगता है कि...।"

"बेटा! ख़ुद को सँभालो। कोई बात नहीं। जाओ और बहू को मायके से ले आओ। कल ही अपने शहर के अनाथालय से एक बच्चा गोद ले लेते हैं।"

कबीरदास के दोहे

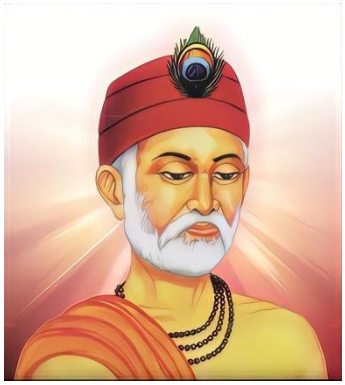

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै है मेरा॥

मन के हारे हार हैं, मन के जीते जीति।
कहै कबीर हरि पाइए, मन ही की परतीति॥

साँच बराबरि तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है ताकै हृदय आप॥

चाकी चलती देखि कै, दिया कबीरा रोइ।
दोइ पट भीतर आइकै, सालिम बचा न कोई॥

माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया सरीर।
आसा त्रिष्णाँ नाँ मुई, यौं कहै दास कबीर॥

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ॥

ऐसी बाँणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ॥

निंदक नियरे राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ।
बिन साबण पाँणीं बिना, निरमल करै सुभाइ॥

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहिं।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि॥

तुलसीदास के दोहे

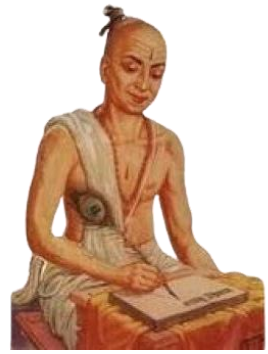

'तुलसी' काया खेत है, मनसा भयौ किसान।
पाप-पुन्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥

'तुलसी' सब छल छाँड़िकै, कीजै राम-सनेह।
अंतर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह॥

आवत हिय हरषै नहीं, नैनन नहीं सनेह।
'तुलसी' तहाँ न जाइए, कंचन बरसे मेह॥

दुर्जन दर्पण सम सदा, करि देखौ हिय गौर।
संमुख की गति और है, विमुख भए पर और॥

'तुलसी' जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥

तुलसी परिहरि हरि हरहि, पाँवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहत होहिंगे, गनिका के से पूत॥

'तुलसी' साथी विपति के, विद्या, विनय, विवेक।
साहस, सुकृत, सुसत्य-व्रत, राम-भरोसो एक॥

'तुलसी' असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत, सील, सुभाव रिजु, राम-चरन-आधार॥

तुलसी प्रीति प्रतीति सों, राम नाम जप जाग।
किएँ होइ बिधि दाहिनो, देइ अभागेहि भाग॥

तुलसी बिलसत नखत निसि, सरद सुधाकर साथ।
मुकुता झालरि झलक जनु, राम सुजसु सिसु हाथ॥

घर दीन्हे घर जात है, घर छोड़े घर जाय।
'तुलसी' घर बन बीच रहू, राम प्रेम-पुर छाय॥

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उजियार॥

भारति जय विजयकरे

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'



भारति, जय, विजयकरे!
कनक-शस्य-कमलधरे!

लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे।

तरु-तृण-वन-लता वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले।

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख-शतरव-मुखरे!

मेरी भी आभा है इसमें

नागार्जुन

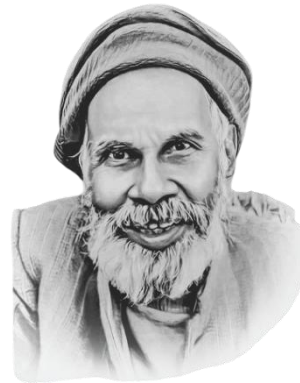

नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखंड आज जो दमक रहा है

मेरी भी आभा है इसमें
भीनी-भीनी ख़ुशबूवाले

रंग-बिरंगे
यह जो इतने फूल खिले हैं

कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था
कल इनको मेरे सपनों ने सहलाया था

पकी सुनहली फ़सलों से जो
अबकी यह खलिहान भर गया

मेरी रग-रग के शोणित की बूँदें इसमें मुस्काती हैं
नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है

यह विशाल भूखंड आज जो चमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

जब हम बड़े हुए

श्री संजय कुमार



ना जाने कब हम बड़े हुए
ना जाने कब हम खड़े हुए

माँ का छूटा आँचल
पिता का छूटा दामन

ना जाने कब हम बड़े हुए

बंधुओ का छूटा साथ
भाई बहन का तकरार

ना जाने कब हम बड़े हुए

गुरुओ का ज्ञान
गुरुओ का ध्यान
वो सराहना वो डाँटना
वो सब छूटा जब हम बड़े हुए

ना जाने कब हम बड़े हुए

लेकिन अब जब हम बड़े हुए
देखा अपना देश
ये मातृभूमि विशेष
जहाँ वीर शिवाजी ने जन्म लिया
जहाँ कई वीरो ने बलिदान दिया

तब जाकर हम खड़े हुए
अब हमको सबके साथ,
सबके प्रयास एवं सबके विश्वास से
प्रगति पथ पर जाना है
इस देश का गौरव बढ़ाना हैं।

अपनी मातृभूमि के लिए कर गुजरना है
उन वीरो के बलिदान का ऋण चुकाना है
चूँकि अब हम बड़े हुए।

कवि श्री संजय कुमार सामाजिक सरोकारों एवं संवेदनाओं के कवि हैं। प्रशासन के क्षेत्र में भी आपका गहन एवं सुदीर्घ अनुभव है। आपने भारतीय वायु सेना, राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, यूजीसी-डीएई वैज्ञानिक अनुसंधान संघ एवं भारतीय सांकेतिक भाषा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केंद्र जैसे कई महत्वपूर्ण सरकारी संस्थानों में प्रशासन-प्रभारी, उप कुलसचिव, उप निदेशक आदि पदों पर रहते हुए प्रशासकीय दायित्वों का कुशल निर्वहन किया है। वैज्ञानिक शब्दावली पर किया गया आपका कार्य अत्यंत उल्लेखनीय रहा है। संप्रति आप राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली में उप-निदेशक (प्रशासन) के रूप में दायित्व निर्वहन कर रहे हैं।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

विश्वास

डॉ. रेखा मीणा



रास्ता खुद छोड़ देंगी मुश्किलें, कदम तो तू बढ़ा अपना,
ले विश्वास की पूंजी दिल में, साकार कर अपना हर सपना,
क्योंकि-;;
विश्वास वो जज़्बा है जो, पत्थर को भगवान बनाता है,
विश्वास वो हौसला है जो, पतझर में बहारें लाता है।

है गर मन में तेरे, विश्वास की ज्योति जली,
पर्वत भी क्या सामने, जिसे तोड़ के नदिया चली,
घने तेज़ तूफ़ानों में भी, जो दिए को जलाता है,
विश्वास वो लगन है जो, सहरा में फूल खिलाता है।

इस विस्तृत विशाल अन्तरिक्ष में कल्पना के जाने का,
अनसुलझे रहस्यों को सुलझाने के स्वप्न सजाने का,
कल्पना के रंगों से जो सपने को साकार बनाता है,
विश्वास वो प्रेरणा है जो जीवन को अमर बनाता है।

ज़मीन का एक टुकड़ा जब, आसमान बन जाये,
राह का कंकड़ कोई नदिया से मोती बनके बहार आये,
वो गौतम किसी अंगुलिमाल को, फिर सच की राह दिखाता है,
विश्वास वो लाठी है जो, मोहन को महात्मा बनाता है।

जलाके दीप विश्वास का, मन का अँधेरा दूर करके,
पोंछ के आँख के आँसू इनमें रोशनी सच की भर के,
वो मनुज फिर जीवन में आगे ही बढ़ाता जाता है,
विश्वास वो शस्त्र है जो जीवन-संघर्ष में विजयश्री दिलाता है।

कवयित्री डॉ रेखा मीणा राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान में अनुसंधान अधिकारी हैं।

कविता- यादें

निशा



तेरी बातों से भी अब आँखों में आँसू हैं
तेरी यादों से भी अब आँखों में आँसू हैं।
तेरे ख़यालों से भीगी जब पलकों की राहें,
ऐसा लगा तूने बड़ा दी है अपनी बांहें।
दर्द में भी एक सुकून पसर जाता है,
माँ का चेहरा जब आंखो पे उतर आता है।
वो भी एक दौर था, जब बातों का सिलसिला हज़ार था,
हर पल में अपनापन था, हर लम्हा प्यार का संसार था।
आज चारों ओर सन्नाटा है, बस एक उम्मीद फकत बन जाए
कि वो बीते हुए पल फिर से हक़ीक़त बन जाए।

तेरे आँचल की छाँव में जैसे पूरा आसमान समाया था,
तेरी गोद में जो सुकून था खुशियों का साया था।
दुनिया की हर दौलत छोटी है तेरे प्यार के आगे,
माँ, तू साथ है तो हर मुश्किल से पार लगा दे।
वक़्त बदला... और ऐसा बदला कि हर कदम पर लगा,
अब गिरा... अब गिरा...
मगर हर बार एक विश्वास दिल में ज़िंदा रहा—
कि अगर मैं गिरी, तो सँभालने के लिए तू होगी।
न सही शरीर से तो तेरी रूह होगी।

मुझे यक़ीन है—
हर अँधेरे में रोशनी बनकर,
हर दर्द में दुआ बनकर,
हर हार में हौसला बनकर,
सिर्फ़ तुम ही मेरे पास हो, माँ...
और हमेशा मेरे पास रहोगी।

तुम्हारी काया का ही प्रतिरूप हूँ माँ
तुम्हारी आत्मा का मैं स्वरूप हूँ माँ
मुझमें तुम जिंदा हो मेरी श्वांस बनकर
मेरे जिंदगी में रहती हो विश्वास बनकर
तेरी यादों की छाँव मेरा सदा सहारा होगी,
तेरी ममता मेरी जिंदगी का किनारा होगी।

कवयित्री भारतीय प्रतिरक्षण संस्थान नई दिल्ली में कार्यरत हैं।

हिन्दी का यश

डॉ विनम्र सेन सिंह



हिन्दी के ही यश को गाते डफली लिए कबीरा।
विद्यापति की थाती लेकर सूर कहै निज पीरा।।

तुलसी राम रामायण गाते, गाये विरहिन मीरा ।
मलिक मोहम्मद रहिमन अपनी भाषा के हैं हीरा ।।

सबकी थाती को समेट हरिऔध सामने आए।
नव युग का जय घोष बजाकर कवि सम्राट कहाए ।।

बंगाली, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू, सिंधी ।
इन सब में अपनी माता की सबसे जेष्ठी हिन्दी ।।

विश्व मंच से हिन्दी बोलें, विश्व गुरु का दर्शन ।
लंदन से अमरीका तक है हिन्दी का आकर्षण ।।

सुरीनाम, मॉरिशस घाना, त्रिनिदाद की बोली ।
उत्तर-दक्षिण, पूरब, पश्चिम सब इसकी हमजोली ।।

कवि देश के जाने-माने साहित्यकार, लेखक, भाषाविद हैं।

कवि देश के जाने-माने साहित्यकार, लेखक, भाषाविद हैं

ग़ज़ल

के० पी० अनमोल



ये और बात है कि तुमको कैसा लगता है
हमें तो जो भी मिला है वो अच्छा लगता है

कुछ-एक रोज़ से ये जेबें थोड़ी भारी हैं
तमाम शहर इन्हें हल्का-हल्का लगता है

बड़े घरों में चमकते हैं काँच और पत्थर
ग़रीब तन पे तो सोना भी खोटा लगता है

लिबास देख के ही पेश आती है दुनिया
पतंग जैसी हो, वैसा ही माँझा लगता है

जहाज डूब गये एक छेद होते ही
ज़रा-सी बात पे ही कितना सदमा लगता है!

जिसे हों जानते, पहचान। हम नहीं पाते
बिना मिले ही कोई देखा-देखा लगता है

उम्मीद भारी हो 'अनमोल' जब मुनाफ़े की
तो बोझ पीठ पे जितना हो, हल्का लगता है

कवि देश के जाने-माने साहित्यकार, लेखक, भाषाविद हैं।

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

दोहे

डॉ. मृदुल शर्मा



साधने में हुए, प्रकृति-प्रेम से दूर।
देख हमारी हरकतें, हुई प्रकृति भी क्रूर।।

नदी प्रदूषित की मृदुल, पाट लिये हैं ताल।
बूँद-बूँद जल के लिए, जीव-जन्तु बेहाल।।

हुए नदारद सब तरफ़, बरगद पीपल आम।
सहन नहीं होता मृदुल, जेठ माह का घाम।।

पैदा होते थे जहाँ, गेहूँ गन्ना धान।
वहाँ मृदुल अब उग रहे, कोठी और मकान।।

जला पराली खेत में, करते वायु अशुद्ध।
प्राणवायु दूषित हुई, साँसें हैं अवरुद्ध।।

ध्वनि विस्तारक चीखते, फिरते हैं दिन-रात।
कान हुए हलकान हैं, दूभर सुनना बात।।

जेठ माह में सूर्य का, असहनीय है ताप।
वृक्ष काटने का मृदुल, भोग रहे हम पाप।।

निलय बनाने के लिए, पाट दिये हैं ताल।
इससे जल संकट बढ़ा, जीव हुए बेहाल।।

पेस्टीसाइड खाद का, किया ख़ूब उपयोग।
कैंसर जैसे बढ़ रहे, जाने कितने रोग।।

गोमुख से ले सिन्धु तक, जितने मिले पड़ाव।
गंगा को सबने दिये, गहरे-गहरे घाव।।

फोरलेन के वास्ते, पीपल किया शहीद।
कामधेनु को त्याग कर, विषधर से उम्मीद।।

पारा चढ़ा पचास तक, असहनीय है ताप।
वृक्ष काटने का मृदुल, भोग रहे हम पाप।।

सचमुच ही यदि आपको, है धरती से प्यार।
वृक्ष-ताल का दीजिए, मृदुल उसे उपहार।।

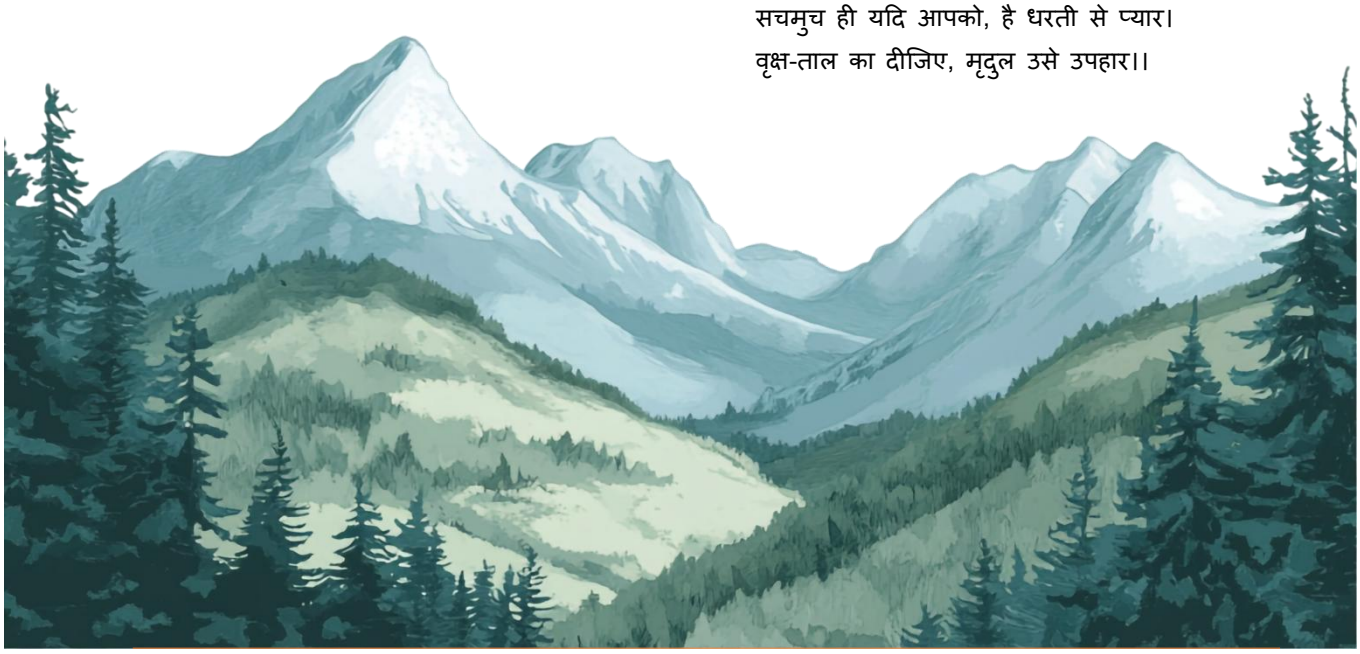

जन स्वास्थ्य धारणा
अंक: 34 । सितम्बर,2026

बहुत दिनों से

डॉ. गणेश श्रीवास्तव 'ऋषि'



बहुत दिनों से देखी नहीं है मैंने गौरया।
बहुत दिनों से साथ नहीं बैठे हैं भैया ।

बहुत दिनों से ले न सका मैं नींव की छांव ।
बहुत दिनों से दीनो हरम को बढ़े नहीं है पांव।

बहुत दिनों से धूप शहर की, नहीं कहीं भी छाईं
दूर गांव पे रहते है जो बाबू जी औ' माई ॥

बहुत दिनों से मन न मचला मिली न कोई पीर ।
बहुत दिनों से देखी नहीं है महबूबा की तस्वीर।

बहुत दिनों से बना हुआ है गहरा ये विश्वास
जब तक रहती साँस है, तब तक रहती आस ।



क्र.सं.	सूचक	ग्रामीण	शहरी	कुल	स्रोत
क.	प्रजनन संबंधी सूचकांक				
1.	अपरिष्कृत जन्म दर (सीबीआर)	20.2	14.7	18.3	एसआरएस रिपोर्ट 2024
2.	सामान्य प्रजनन दर (जीएफआर)	71.1	49.8	63.6	एसआरएस रिपोर्ट 2024
3.	कुल प्रजनन दर (टीएफआर)	2.1	1.5	1.9	एसआरएस रिपोर्ट 2024
		2.1	1.6	2.0	एनएफएचएस-6 (2023-24)
4.	जन्म के समय लिंग अनुपात	914	928	918	एसआरएस रिपोर्ट 2024
ख.	मृत्यु दर सूचकांक				
1.	अपरिष्कृत जन्म दर (सीबीआर)	20.2	14.7	18.3	एसआरएस रिपोर्ट 2024
2.	सामान्य प्रजनन दर (जीएफआर)	71.1	49.8	63.6	एसआरएस रिपोर्ट 2024
3.	कुल प्रजनन दर (टीएफआर)	2.1	1.5	1.9	एसआरएस रिपोर्ट 2024
		2.1	1.6	2.0	एनएफएचएस-6 (2023-24)
4.	जन्म के समय लिंग अनुपात	914	928	918	एसआरएस रिपोर्ट 2024
5.	मृतजन्म दर (एसबीआर)	7.0	5.0	7.0	एसआरएस रिपोर्ट 2024
6.	मातृ मृत्यु अनुपात	-	-	87	एसआरएस विशेष बुलेटिन (2022-24)
7.	मातृ मृत्यु दर	-	-	5	एसआरएस विशेष बुलेटिन (2022-24)
8.	जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	69.4(कुल) 67.4(पुरुष) 71.8(महिला)	73.2(कुल) 71.6(पुरुष) 75.1(महिला)	70.6(कुल) 68.7(पुरुष) 72.8(महिला)	एसआरएस संक्षिप्त जीवन तालिकाएँ (2020-24)
9.	मृतजन्म दर (एसबीआर)	7.0	5.0	7.0	एसआरएस रिपोर्ट 2024

ग.	अन्य सूचकांक				
1.	अंतराल की अपूरित आवश्यकता(%)	4.9	3.5	4.5	एनएफएचएस-6 (2023-24)
2,	सीमित करने की अपूरित आवश्यकता (%)	4.2	3.5	4.0	एनएफएचएस-6 (2023-24)
3.	कुल अपूरित आवश्यकता (%)	9.1	7.0	8.5	एनएफएचएस-6 (2023-24)
4.	गर्भनिरोधक प्रचलन दर (सीपीआर) (कोई भी विधि) (%)	68.9	69.6	69.1	एनएफएचएस-6 (2023-24)
5.	माताएँ जिन्होंने कम से कम चार प्रसवपूर्व जाँच (एएनसी) कराई (%)	61.4	75.8	65.2	एनएफएचएस-6 (2023-24)
6.	संस्थागत प्रसव(%)	89.0	95.2	90.6	एनएफएचएस-6 (2023-24)
घ.	**पोषण संबंधी सूचकांक**				
1.	5 वर्ष से कम उम्र के अनुसार कम लंबाई वाले बच्चे (उम्र के हिसाब से लंबाई) (%)	30.9	23.9	29.3	एनएफएचएस-6 (2023-24)
2.	5 वर्ष से कम उम्र के बच्चे जो कमज़ोर हैं (ऊंचाई के अनुसार वजन) (%)	19.8	16.5	19.0	एनएफएचएस-6 (2023-24)
3.	5 वर्ष से कम उम्र के बच्चे जिनका वजन कम है (उम्र के हिसाब से वजन) (%)	33.8	25.3	31.8	एनएफएचएस-6 (2023-24)
	बीएमआई <18.5 किग्रा/मी^{2} (%) वाली महिलाएं	22.5	13.2	19.7	एनएफएचएस-6 (2023-24)
4.	बीएमआई <18.5 किग्रा/मी^{2} (%) वाले पुरुष	21.9	14.9	19.7	एनएफएचएस-6 (2023-24)
5.	बीएमआई ≥25.0 किग्रा/मी^{2} (%) वाली महिलाएं	25.5	42.8	30.7	एनएफएचएस-6 (2023-24)
6.	बीएमआई ≥25.0 किग्रा/मी^{2} (%) वाले पुरुष	23.0	36.3	27.3	एनएफएचएस-6 (2023-24)
7.	5 वर्ष से कम उम्र के अनुसार कम लंबाई वाले बच्चे (उम्र के हिसाब से लंबाई) (%)	30.9	23.9	29.3	एनएफएचएस-6 (2023-24)

द्वारा प्रबंधित

- डॉ. राजेश रंजन (कार्यवाहक विभागाध्यक्ष, महामारी विज्ञान विभाग)
- श्रीमती भावना कथूरिया (सहायक अनुसंधान अधिकारी, महामारी विज्ञान विभाग)
- श्रीविशालदराल (सहायक अनुसंधान अधिकारी, महामारी विज्ञान विभाग)
- अनुभवपंगोत्रा — (पीएचडीशोधार्थी)

अनुरोध

‘जन स्वास्थ्य धारणा’ के आगामी अंक के लिए जन स्वास्थ्य के विविध विषयों पर आपके मौलिक लेख एवं कविताएँ आमंत्रित हैं। कृपया अपनी रचनाएँ यथासंभव हिन्दी फॉन्ट ‘मंगल’ में टंकित कर भेजें। लेखकों एवं कवियों से अनुरोध है कि अपनी रचना की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें। स्वीकृत रचनाओं को पत्रिका के आगामी अंक में प्रकाशित किया जाएगा तथा लेखक/कवि को पत्रिका की एक प्रति प्रेषित की जाएगी। अस्वीकृत रचनाएँ वापस नहीं भेजी जाएँगी और इस संबंध में संस्थान द्वारा कोई पत्राचार नहीं किया जाएगा। पत्रिका को और अधिक उपयोगी एवं उत्कृष्ट बनाने के लिए आपके सुझावों का सदैव स्वागत है।-संपादक



राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान : एक परिचय

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान की स्थापना राष्ट्रीय स्तर के दो भूतपूर्व संस्थानों– राष्ट्रीय परिवार नियोजन संस्थान (1962) तथा राश्ट्रीय स्वास्थ्य प्रशासन एवं शिक्षण संस्थान का विलय करके 9 मार्च, 1977 को हुई थी। संस्थान का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से देश में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों के विकास की दिशा में एक शीर्षस्थ तकनीकी संस्थान के रूप में अग्रणी भूमिका एवं नेतृत्व प्रदान करना है। इन गतिविधियों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण, अनुसंधान, मूल्यांकन, परियोजनाओं का संचालन, विशिष्ट सेवाएँ इत्यादि प्रदान करना शामिल है।

बुनियादी शिक्षाः संस्थान द्वारा अपनी शैक्षिक गतिविधियों के संचालन के माध्यम से स्वास्थ्य जनशक्ति का विकास करके देश में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों की प्रबंधन व्यवस्था को सुदृढ़ करने की दिशा में योगदान किया जाता है। यह पाठ्यक्रम आवश्यकता पर आधारित तथा बहुआनुशासनिक स्वरूप के होते हैं। इन पाठ्यक्रमों में (1) एम.डी. (सामुदायिक स्वास्थ्य प्रशासन) में तीन वर्षीय स्नातकोत्तर डिग्री पाठ्यक्रम; (2) स्वास्थ्य प्रशासन में दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम ;(3) दूर शिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण प्रबंधन में स्नातकोत्तर सर्टीफिकेट पाठ्यक्रम; तथा (4) अस्पताल प्रबंधन में स्नातकोत्तर सर्टीफिकेट पाठ्यक्रम प्रमुख हैं।

प्रशिक्षण तथा कार्यशालाएंः स्वास्थ्य के क्षेत्र में सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से उपयुक्त प्रकार के मानव संसाधनों का विकास करना इस संस्थान का प्रमुख दायित्व है। संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष 75–80 प्रशिक्षण कार्यक्रमों/कार्यशालाओं (संस्थागत तथा बाह्य) का संचालन किया जाता है, जिनका उद्देश्य (1) प्रतिभागियों को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संबंधी नीतियों तथा कार्यक्रमों के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से अवगत कराना; (2) इन कार्यक्रमों को क्रियान्वित कराने में आ रही समस्याओं के समाधान के बारे में ज्ञान का अद्यतन करना; तथा (3) इनके समाधान के उपाय सुझाना है।

अनुसंधान एवं मूल्यांकनः स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के क्षेत्र में विभिन्न पक्षों पर अनुसंधान कार्यों को वरीयता प्रदान की जाती है। अधिकांश अध्ययनों का सूत्रपात संस्थान द्वारा किया जाता है, जबकि कुछ अन्य परियोजनाओं का संचालन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा अन्य राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सहभागी संगठनों के आग्रह पर किया जाता है। संस्थान द्वारा संचालित अनुसंधान को प्रमुख रूप से दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, क–जैव चिकित्सा अनुसंधान; तथा ख– स्वास्थ्य प्रणाली अनुसंधान।

राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ नेटवर्किंगः अनुसंधान तथा प्रशिक्षण गतिविधियों के सुचारू संचालन की दिशा में संस्थान द्वारा विभिन्न राश्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ नेटवर्किंग की स्थापना भी की गई है। इनमें स्वास्थ्य प्रबंधन विषयक राष्ट्रीय कंसोर्टियम तथा स्वास्थ्य प्रणाली अनुसंधान विषयक राश्ट्रीय कंसोर्टियम आदि प्रमुख हैं। यह संस्थान स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के तत्वाधान में राष्ट्रीय प्रजनन शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम के अंतर्गत देश भर में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन, प्रबोधन और समन्वयन के लिए एक नोडल एजेंसी के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर रहा है।

विशिष्ट सेवाएंः संस्थान द्वारा बांझपन तथा प्रजनन विकारों के उपचार आदि के लिए क्लिनिकल सेवाएं भी प्रदान की जाती हैं। इसके अतिरिक्त, संस्थान द्वारा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विषयों पर अनेक प्रकाशन तथा सामयिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित की जाती हैं, जिनमें 'हैल्थ एण्ड पापुलेशन–परस्पेक्टिव्स एण्ड इश्यूज' तथा हिन्दी लेखों की पत्रिका 'जन स्वास्थ्य धारणा' उल्लेखनीय है। संस्थान के राष्ट्रीय प्रालेखन केन्द्र द्वारा प्रकाशन, प्रेस क्लिपिंग और संदर्भ ग्रंथ–सूची जैसी सेवाएं प्रदान करने के साथ–साथ मीडिया शिक्षण स्रोत केन्द्र द्वारा शैक्षिक गतिविधियों के समर्थन के लिए वीडियो फिल्म लाइब्रेरी का संचालन भी किया जाता है। रामर्श सेवाएं: संस्थान के निदेशक एवं संकाय सदस्यों द्वारा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण से संबद्ध विभिन्न विषय क्षेत्रों में राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय एवं स्वैच्छिक संगठनों को परामर्श सेवाएं भी प्रदान की जाती हैं।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान
(स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार)
मुनीरका, नई दिल्ली–110067